स्वातंत्र्योत्तर हिंदी मिथक नाटकों में आधुनिक बोध

HIN-675 शोध प्रबंध

श्रेयांक: 16

स्नातकोत्तर कला (हिंदी)

की उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु शोध प्रबंध

शोधार्थी

देविका सुदिन सिनाय सांबारी

अनुक्रमांक: 22P0140009

PR Number: 20190538

मार्गदर्शक

आदित्य दयानंद सिनाय भांगी

शणै गोंयबाब भाषा और साहित्य संकाय

हिंदी अध्ययन शाखा

गोवा विश्वविद्यालय

अप्रैल 2024

GOA UNIVERSITY SHENOI GOEMBAB SCHOOL OF LANGUAGES & LITERATURE TALEIGAON PLATEAU

परीक्षक: Aditya Bhangui

Seal of the School

DECLARATION BY STUDENT

I hereby declare that the data presented in this Dissertation report entitled, "Swaatantryottar Hindi Mithak Naatkon mein Aadhunik Bodh" is based on the results of investigations carried out by me in the Discipline of Hindi at Shenoi Goembab School of Languages and Literature, Goa University under the Supervision of Mr. Aditya Dayanand Sinai Bhangui and the same has not been submitted elsewhere for the award of a degree or diploma by me. Further, I understand that Goa University or its authorities will be not be responsible for the correctness of observations/experimental or other findings given the dissertation. I hereby authorize the University authorities to upload this dissertation on the dissertation repository or anywhere else as the UGC regulations demand and make it available to any one as needed.

Devika Sudin Sinai Sambari

22P0140009

Date: 15th April 2024
Place: Goa University

COMPLETION CERTIFICATE

This is to certify that the dissertation report "Swaatantryottar Hindi Mithak Naatkon mein Aadhunik Bodh" is a bonafide work carried out by Ms. Devika Sudin Sinai Sambari under my supervision in partial fulfilment of the requirements for the award of the degree of Master of Arts in the Discipline of Hindi at the Shenoi Goembab School of Languages and Literature, Goa University.

A Bhangui

Mr.Aditya Dayanand Sinai Bhangui

Professor Anuradha Wagle

Dean, SGSLL, Goa University

GOA UNIVERSITY SHENOI GOEMBAB SCHOOL OF LANGUAGES & LITERATURE TALEIGAON PLATEAU

School Stamp

Date: 15th April 2024

Place: Goa University

ATMANIRBHAR BHARAT
SWAYAMPURNA GOA

गोंय विद्यापीठ
ताळगांव पठार,
गोंय – ४०३ २०६
फोन : +९१-८६६९६०९०४८

(Accredited by NAAC)

Goa University
Taleigao Plateau, Goa-403 206
Tel : +91-8669609048
Email : registrar@unigoa.ac.in
Website : www.unigoa.ac.in

Ref. No.: GU/LIB/ATTENDANCE CERT./2024/267

Date: 09/05/2024

TO WHOM SO EVER IT MAY CONCERN

This is to certify that Miss Devika Sudin Sinai Sambari a student of Goa University, M.A. (Hindi), visited the Goa University Library for her reference work on the following dates and completed 25 Hours & 04 Minutes of research internship as a part of her M.A. dissertation.

The detailed dates and times she visited are attached herewith.

This certificate has been issued at the written request of Assistant Professor Aditya Bhangui.

9/5/24

University Librarian
(Dr. Sandesh B. Dessai)

Sandesh B. Dessai
UNIVERSITY LIBRARIAN
Goa University
Taleigao - Goa.

GOA UNIVERSITY LIBRARY GOA

VISITS TO GOA UNIVERSITY LIBRARY

SR.NO.	DATE	TIMING	TIME SPENT
1.	07/07/2023	11:10- 1:45	2 hrs 35 mins
2.	13/07/23	4:20-4:35	15 mins
3.	28/07/2023	10:30- 12:10	2 hrs 40 mins
4.	10/8/2023	12:30-1:45	1 hr 15 mins
5.	11/08/2023	1:30-5:30	4 hrs
6.	27/09/2023	10:00-6:00	8 hrs
7.	18/10/2023	10:55-11:09	14 mins
8.	11/01/2024	12:10-1:00	40 mins
9.	14/03/2024	3:45-4:30	45 mins
10.	18/03/2024	12:50-2:00	1 hr 40 mins
11.	25/04/2024	3:00-6:00	3hrs
Total hours			**25 Hours 04 Minutes**

A Bhangui
Signature of the Guide
(Asst. Prof. Aditya Bhangui)

Signature of the University Librarian
Dr. Sandesh B. Dessai

Signature of the Student
Miss Devika Sudin Sinai Sambari

अनुक्रम

अध्याय	विवरण	पृष्ठ संख्या
	Acknowledgements	II & III
	अनुक्रम	IV
	अध्याय विभाजन, कृतज्ञता & भूमिका	V & VII
1	मिथक : अवधारणा एवं स्वरूप 1.1 मिथक का अर्थ एवं स्वरूप 1.2 मिथक : भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टिकोण 1.2.1 भारतीय दृष्टिकोण 1.2.2 पाश्चात्य दृष्टिकोण 1. 3 मिथक की विशेषताएँ एवं महत्त्व 1.3.1 मिथक की विशेषताएँ 1.3.2 मिथक का महत्त्व	Page No: 01 to Page No: 16
2	आधुनिक बोध : अवधारणा एवं स्वरूप 2.1 आधुनिक बोध : अर्थ एवं स्वरूप 2.2 आधुनिकता और आधुनिकीकरण 2.3 आधुनिक बोध का महत्त्व	Page No: 17 to Page No: 27
3	मिथक नाटकों में आधुनिक बोध 3.1 अंधायुग 3.2 एक कंठ विषपायी 3.3 लहरों के राजहंस 3.4 एक और द्रोणाचार्य 3.5 माधवी	Page No: 28 to Page No: 73
4	मिथक नाटकों की भाषा-शैली एवं संवाद 4.1 अंधायुग 4.2 एक कंठ विषपायी 4.3 लहरों के राजहंस 4.4 एक और द्रोणाचार्य 4.5 माधवी उपसंहार	Page No: 74 to Page No: 97
5	संदर्भ	Page No: 98 to Page No: 104

अध्याय विभाजन

प्रथम अध्याय- मिथक : अवधारणा एवं स्वरूप

इसमें मिथक के अर्थ और स्वरूप का विस्तार से अध्ययन किया है। इसमें मिथक के संदर्भ में भारतीय और पाश्चात्य दृष्टिकोण का भी समावेश किया है तथा मिथक की विशेषताएँ एवं महत्त्व पर भी प्रकाश डाला है।

द्वितीय अध्याय- आधुनिक बोध : अवधारणा एवं स्वरूप

इसमें आधुनिक बोध के अर्थ और स्वरूप की विस्तार से चर्चा की है। आधुनिकता और आधुनिकीकरण पर बात की है और आधुनिक बोध के महत्त्व को भी रेखांकित किया है।

तृतीय अध्याय- मिथक नाटकों में आधुनिक बोध

पाँच चयनित नाटकों के विश्लेषण के साथ उसमें मौजूद आधुनिक बोध को स्पष्ट करना इस अध्याय का उद्देश्य रहा है। इसमें धर्मवीर भारती द्वारा रचित अंधायुग, दुष्यंत कुमार का एक कंठ विषपायी, मोहन राकेश का लहरों के राजहंस, शंकर शेष का एक और द्रोणाचार्य तथा भीष्म साहनी द्वारा लिखित माधवी नाटक की विस्तृत चर्चा की है।

चतुर्थ अध्याय- मिथक नाटकों की भाषा शैली एवं संवाद

इसमें उपर्युक्त नाटकों की भाषा-शैली एवं संवादों का उल्लेख किया है।

कृतज्ञता

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी मिथक नाटकों में आधुनिकता बोध विषय पर संपन्न यह लघु शोध प्रबंध पूरा करना संभव नहीं था यदि मुझे किसी का उत्तम मार्गदर्शन नहीं मिला होता। यह लघु शोध पूरा करने में शोध निर्देशक सहायक प्राध्यापक आदित्य दयानंद सिनाय भांगी जी के सहयोग के लिए मैं उनकी आभारी हूँ। उन्होंने विषय चयन से लेकर टंकण करने तक मेरी सहायता की, मुझे जिन किताबों की आवश्यकता थी वह किताबें उपलब्ध करवा दी और समय-समय पर मार्गदर्शन किया।

शणै गोंयबाब भाषा एवं साहित्य महाशाला की उपअधिष्ठाता प्रो. वृषाली मांद्रेकर जी ने मुझे नाटकों के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण जानकारी दी। हिंदी अध्ययन शाखा के निदेशक डॉ. बिपिन तिवारी ने भी मेरा मार्गदर्शन किया। हिंदी विभाग के अन्य प्राध्यापक दीपक वरक, ममता वेर्लेकर, मनीषा गावडे तथा श्वेता गोवेकर जी ने भी मेरा पूरा सहयोग किया। उन सभी प्रति मैं मेरी कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ। मेरे परिवार वालों ने भी क़दम-क़दम पर मेरा पथ-प्रदर्शन किया, उनको सिर्फ़ धन्यवाद कहना काफ़ी नहीं होगा। मेरे शोध समूह सदस्य रचिता कांबळी, रेशमा सावंत, रेशमा नदाफ़ और सुष्मिता वेळीप ने भी मेरी बहुत मदद की।

इसके अतिरिक्त गोवा विश्वविद्यालय ग्रंथालय, कृष्णदास शामा ग्रंथालय, पणजी, डॉ. फ्रांसिस्को लुईस गोम्स ग्रंथालय, नावेली से मुझे पूरा सहयोग मिला, वहाँ के कर्मचारियों ने मेरे विषय से संबंधित किताबें ढूँढने में मेरी मदद की और मेरा काम आसान किया। मैं सदैव उनकी ऋणी रहूँगी। अपने प्रति की हुई श्रेष्ठ और उत्कृष्ट सहायता के लिए श्रद्धावान होकर मैं सभी के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ।

भूमिका

मिथक सामूहिक जीवन का संचित अनुभव है जो समाज और सामाजिक व्यवहार को बनाने और आकार देने का काम करते है। मिथक इतिहास को समझने का द्वार है तथा उनका अस्तित्व हमारे जीवन में अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। स्वातंत्र्योत्तर युग में मिथक का सहारा लेकर अनेक नाटक लिखे जिसमें आधुनिक जीवन की त्रासदी का चित्रण मिलता है। नाटककारों ने मिथकीय कथा का संदर्भ लेकर उसे आधुनिक समस्याओं से जोड़ा और प्रासंगिक बनाया। नाटकों को सशक्त एवं सदृढ़ बनाने के लिए उनमें महाभारत की पौराणीक कथा का आश्रय लिया।

यह लघु शोध चार अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय में मिथक की अवधारणा और स्वरूप पर विचार किया गया है। जिसमें मिथक के अर्थ और स्वरूप का विस्तार से अध्ययन किया है। इसमें मिथक के संदर्भ में भारतीय और पाश्चात्य दृष्टिकोण का भी समावेश किया है तथा मिथक की विशेषताएँ एवं महत्त्व पर भी प्रकाश डाला है। द्वितीय अध्याय में आधुनिक बोध की अवधारणा और स्वरूप को स्पष्ट किया है। जिसमें आधुनिक बोध के अर्थ और स्वरूप की विस्तार से चर्चा की है। आधुनिकता और आधुनिकीकरण पर बात की है और आधुनिक बोध के महत्त्व को भी रेखांकित किया है। तृतीय अध्याय में पाँच चयनित नाटकों के विश्लेषण के साथ उसमें मौजूद आधुनिक बोध को स्पष्ट करना इस अध्याय का उद्देश्य रहा है। इसमें धर्मवीर भारती द्वारा रचित अंधायुग, दुष्यंत कुमार का एक कंठ विषपायी, मोहन राकेश का लहरों के राजहंस, शंकर शेष का एक और द्रोणाचार्य तथा भीष्म साहनी द्वारा लिखित माधवी नाटक की विस्तृत चर्चा की है। चतुर्थ अध्याय में उपर्युक्त नाटकों की भाषा-शैली एवं संवादों का उल्लेख किया है। अंत में उपसंहार और संदर्भ सूची प्रस्तुत की गई है।

इस शोध का उद्देश्य आज की पीढ़ी को नाटकों के माध्यम से मिथकों से अवगत करने का है। पाठकों को मिथकीय नाटकों के माध्यम से वर्तमान स्थितियों से अवगत कराना, पाठकों को इतिहास और पुराण की जानकारी देना भी इस शोध का उद्देश्य है।

प्रथम अध्याय

मिथक : अवधारणा एवं स्वरूप

1 मिथक: अवधारणा एवं स्वरूप

1.1 मिथक का अर्थ और स्वरूप

'मिथ' (Myth) मूल रूप में ग्रीक भाषा का शब्द है। यूनानी के माइथॉस शब्द (Mythos) या (Muthos) से इसकी व्युत्पत्ति मानी गई है, जिसका अर्थ है - 'मुँह से निकला हुआ' 'आप्तवचन' या 'अतर्क कथन'। "कुछ आलोचक इसका अर्थ संस्कृत के 'मिथस्' (परस्परता का वाचक) या 'मिथ्या' (असत्य) से मानते हैं। इस रूप में यह शब्द मिथ्या, कपोल कल्पना, असत्य और सत्य का परस्पर मिश्रण का परिचायक होगा।"[1] फ्रेंच शब्दकोश के अनुसार 'मिथ' का अर्थ है जिसका यथार्थतः अस्तित्व नहीं है। 'मिथ' शब्द के कुछ अन्य कोशगत अर्थ हैं- कोई पुरानी कहानी अथवा लोक-विश्वास, किसी जाति का आख्यान, धार्मिक विश्वासों एवं प्रकृति के रहस्यों के विश्लेषण से युक्त देवताओं तथा वीर पुरुषों की पारंपरिक गाथा, किवदंती आदि। संस्कृत में 'मिथ' शब्द अनेकार्थी है। इसका अर्थ एक तरफ़ प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करना, सहकारी बनना, एकत्र करना, मिलना या समझना होता है, तो दूसरी तरफ़ चोट पहुँचाना, प्रहार करना या वध करना भी होता है।

Oxford English Dictionary के अनुसार- A purely fictious narrative usually involving supernatural persons, actions or events and embodying some popular idea concerning natural or historical phenomena"[2] अर्थात्- पूरी तरह से काल्पनिक कथा जिसमें आमतौर पर अलौकिक व्यक्तियों, कार्यों या घटनाओं को शामिल किया जाता है और प्राकृतिक या ऐतिहासिक घटनाओं से संबंधित कुछ लोकप्रिय विचार शामिल होते हैं।

मिथ या मिथक शब्द का अर्थ है - परंपरागत, पौराणिक या लोक विश्वासमूलक संदर्भ। मिथक ऐसे संदर्भ हैं जिनके पीछे पूर्वधारणा या विश्वास की शक्ति निहित होती है। मिथक का आधार लोक-विश्वास होता है। लोक द्वारा ही मिथक का निर्माण होता है। 'मिथक' ऐसे आख्यान को कहते हैं जिसमें कोई तार्किक संगति न हो। इसके लिए 'दंतकथा', 'पुरावृत्त', 'पुराकथा' जैसे कई शब्द प्रयुक्त होते हैं। भारतीय संदर्भों में मिथक की अवधारणा लगभग नई है। हिंदी भाषा और साहित्य में इस शब्द के आविष्कारक आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी हैं। अँग्रेज़ी के 'मिथ' शब्द के समानांतर उन्होंने इस शब्द की कल्पना की।

विशेषतः इसका संबंध देवताओं, विश्व की उत्पत्ति तथा विश्ववासियों से होता है। यह एक ऐसा विश्वास है, जो बिना किसी तर्क के स्वीकार कर लिया जाता है। आज के तर्क प्रधान युग में मिथक जैसे अतार्किक संरचना के विषय में प्रश्न किया जा सकता है, किंतु सच बात यह है कि मनुष्य मिथकों के बिना रह नहीं सकता। उसे बुद्धि एवं तर्क से ऊपर उठाकर कुछ ऐसा चाहिए जिसे वह पूरे हृदय से स्वीकार कर सके। ऐसी बहुत-सी बातों को बुद्धि प्रधान युग अंधविश्वास अथवा किंवदंती कहकर अस्वीकार कर सकता है। "ऐसा भी संभव है कि नए युग में अधिकांश पुराने मिथकों को कपोल कल्पना कहकर अनुपयुक्त सिद्ध किया जाए, किंतु मिथकों का महत्त्व कभी कम नहीं होने वाला है। नए मिथक पुराने मिथकों का स्थान ले लेते हैं। पुराने मिथक कुछ समय तक दबे अथवा अप्रचलित रूप में पड़े रहते हैं। अवसर आने पर पुराने और अप्रचलित पड़े हुए मिथक पुनः नए संदर्भ एवं नवजीवन प्राप्त कर लेते हैं।"[3] यह एक प्रतीकात्मक कथा है जिसका उपयोग लोक-मानस के प्रारंभिक इतिहास को समझने के लिए किया जाता है। वे कुछ संस्कृतियों

या सांस्कृतिक प्रथाओं के प्रारंभिक इतिहास, उत्पत्ति या लोगों के निश्चित समूह के सामाजिक और सांस्कृतिक विकास की व्याख्या करते हैं।

मिथक का जन्म मानव के सामाजिक जीवन के क्रियाकलापों, प्रथाओं, रीति-रिवाजों, घटनाओं या अन्य किसी तथ्य के रहस्योद्घाटन के उद्देश्य से हुआ। इसे कुछ लोगों ने सृष्टि के रहस्योद्घाटन से संबंधित कथा मात्र माना। आदिम मानव ने प्राकृतिक रहस्यों को अभिव्यक्त करने के लिए मिथकों का निर्माण किया था। इसी कारण मिथक आद्य-प्रतीकों का समूह कहलाया। मिथक एक प्रकार की रहस्यमयी भाषा है, जिनमें सत्य उद्घाटित होता है। यह भौतिक जगत् के रहस्यों का उद्घाटन करने वाली कथा ही नहीं, मनुष्य जीवन के रहस्य सुलझाने का साधन भी है।

आदिम सभ्यता के युग से मिथक का प्रयोग मनुष्य करता रहा है। वेद, ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक, उपनिषद आदि प्राचीन ग्रंथों में वाराह, बामन, इंद्र, वरुण, कूर्म, नरसिंह आदि सभी पुरा प्रतीक के रूप में स्वीकार किए जाते हैं। "हिंदी साहित्य के आदिकाल में भी जो साहित्य लिखा गया, जिसे आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने ग्रंथ 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में 'वीर गाथा काल' की संज्ञा दी है, यत्र-तत्र मिश्रक का स्वरूप परिलक्षित होता है। भाषा जहाँ अभिव्यक्ति में असमर्थ हो जाती है, वहाँ मनुष्य प्रतीकों का ही आश्रय लेता है। आदिकाल में राजस्थानी काव्य के अंतर्गत नरयति नाल्ह कृत खंड काव्य "बीसलदेव रास" में एक प्रकार का मिथक ही है।"[4]

डॉ॰ नगेंद्र ने अपनी किताब मिथक और साहित्य में लिखा है,"मिथक मूलतः आदिम मानव के समष्टि-मन की सृष्टि है जिसमें चेतन की अपेक्षा अचेतन प्रकिया का प्राधान्य रहता है।" अर्थात् मिथक का निर्माण मनुष्य के द्वारा ही हुआ है, लेकिन उसमें ज्ञान की अपेक्षा अज्ञान अधिक होता है।[5] लोकजीवन के साथ निकटता से संबद्ध होने के कारण आधुनिक युग में धर्म, लोक-

साहित्य, मानव विज्ञान, समाज-विज्ञान, मनोविश्लेषण तथा ललित कलाओं के अंतरनुशासनिक अध्ययन के विकास के साथ मिथकों का महत्व बढ़ गया है। मिथक आधुनिकता को परंपरा के साथ जोड़कर तथा परंपरा को आधुनिकता के संदर्भ में रखकर आलोच्य बनता है। मिथक अतीत से संबद्ध होता है। मनुष्य का जितना भी चिंतन है, उसका अधिकांश भाग अतीत से ही संबंधित होता है। साहित्य में मिथक के महत्त्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

पहले मिथ् शब्द का प्रयोग देवी-देवताओं की गाथा के लिए होता था जिसकी ऐतिहासिकता भले अविश्वसनीय हो किंतु लोकमत जिस पर विश्वास रखने का अभ्यस्त हो चुका है, किंतु धीरे-धीरे प्रख्यात वीरों से संबंधित कथाएँ, लोक प्रसिद्ध चरित्र एवं लोक विश्वासों से जुड़ी घटनाएँ ये सभी मिथ के अंतर्गत आते हैं। इस प्रकार मिथ या मिथक लोकमान्यता, विश्वास या धारणाओं पर आधारित पौराणिक, अर्द्ध पौराणिक या किंवदंतीमूलक संदर्भो, चरित्रों, क्रियाओं तथा वस्तुओं का वाचक बन गया।

मिथक का धार्मिक तथा आध्यात्मिक जीवन से उतना गहरा संबंध नहीं है जितना कि सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन से है। सभ्यता के प्रारंभिक युग में आदिम मनुष्य की मिथकीय परिकल्पना बड़ी समृद्ध थी। ‘‘मिथ आदिम मनुष्य की धार्मिक्त एवं आध्यात्मिक कल्पनाक्षमता का प्रमाण है।’’[6] धर्म से मिथक का घनिष्ठ संबंध होने का प्रधान कारण यह है कि धर्म भी दूसरे जगत् या परलोक की आधारभूमि पर ही स्थित होता है और अतिलौकिक या अतिमानवीय तत्त्वों का योग उसके साथ अनिवार्य होता है। इसके साथ ही कभी-कभी मिथक सीधे धर्म के, नायकों के साथ ही प्रत्यक्षतः संबद्ध होता है। फिर भी इसकी रचना में लोकवार्ता के तत्त्वों का योग अधिक रहता है तथा इसके अध्ययन में लोकवार्ता, का स्थान महत्त्वपूर्ण होता है।

इस प्रकार मिथक एक ओर धर्म से सम्बन्धित होता है तथा दूसरी ओर इसका संबंध लोकवार्ता से है। धर्मनिरपेक्षता नायक संस्कृति के आदर्श मनुष्य का चित्र प्रस्तुत करता है। मिथक शास्त्र अपने रचयिताओं को प्रायः विशिष्ट महापुरुषों के रूप में या पुराण पुरुष के रूप में अथवा अवतारी पुरुष के रूप में प्रस्तुत करने के लिए विख्यात रहा है।

"आज का विज्ञान मिथक के कथनों को खंडित करके नया तर्क देता है, किंतु एक काल की सामाजिक हलचलों की पहचान कराने के कारण मिथकों को विज्ञान का ही पूर्व हिस्सा मान लेना चाहिए।"[7] विज्ञान के विकास के साथ मिथक का अस्तित्व मिटने के कगार पर था, किंतु मानव की धर्म, संस्कृति और आस्था मिथक को सदैव प्रासंगिक ही बनाए रखेगी।

1.2 मिथक: भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टिकोण

1.2.1भारतीय दृष्टिकोण

भारत में मिथक संबंधी अवधारणा मूलतः वेदों और उपनिषदों के आधार पर विकसित हुई है क्योंकि पूरा वैदिक साहित्य मिथकों से भरा पड़ा है। भारतीय संस्कृति के मूल बिंदु वेदों में ही खोजे जाते हैं। वेदों से लेकर संस्कृत के काव्य-महाकाव्य, नाटक तथा आख्यायिका आदि में और पालि, प्राकृत और अपभ्रंश के साहित्य में मिथक बिखरी पड़ी है। "भारतीय चिंतन में प्रायः मिथक विषयक धारणा पुराण, पुराख्यान, धर्मगाथा, देवकथा, लोकाख्यान, प्रख्यात कथानक आदि के विवेचन में पुराकाल से ही उपलब्ध है।"[8] आदिकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल

का भारतीय साहित्य मिथकों की शक्ति से समृद्ध है। आधुनिक युग में मिथक को युगद्रष्टा और मानव को मिथकों का मूलाधार मानकर देखा गया है।

डॉ॰ रमेश गौतम के मत में-"मिथक मनुष्य के आदिम मस्तिष्क की सृजनशील शक्तियों का मूल्यवान सांस्कृतिक उपहार है।"[9] मनुष्य बौद्धिक प्राणी है। उसके विचारों के कारण ही आज मिथक का अस्तित्व है।

डॉ॰ नगेंद्र के मत में-"मिथक आदिम मानव के समिष्टि मन की सृष्टि है जिसमें चेतना की अपेक्षा अचेतना की प्रक्रिया का प्राधान्य रहता है।"[10] मिथक मानव द्वारा ही बनाया गया है जिसमें कोई तथ्य उपस्थित नहीं होता। इसमें केवल अज्ञानता की प्रधानता होती है।

डॉ॰ शंभुनाथ सिंह मिथक के संदर्भ मे लिखते हैं -"इतिहास को सामाजिक स्मृति एवं युगीन जन भावना का द्वार बनाना, अतीत में जाना भी कहा जा सकता है, किंतु उसके परिप्रेक्ष्य में वर्तमान को कुशलता से अभिव्यक्त कर देना ही 'मिथक' है।"[11] मिथक के कारण हम हमारे इतिहास का अध्ययन कर सकते हैं। उसी प्रकार वर्तमान को भी एक दिशा प्रदान कर सकते हैं।

डॉ॰ मालती सिंह के मतानुसार-"मिथक आदि मानव द्वारा गढ़ी गई दैविक शक्ति से संबंधित कथाएँ हैं।"[12] गढ़ना यानी बनाना। मानव की यह प्रवृत्ति यह रही है कि वह सतत किसी वस्तु का निर्माण करता है । उसी प्रकार उसने किसी दैविक शक्ति को पहचाना और उस तथ्य में कल्पना का समावेश किया और सत्य-असत्य के मिश्रण से एक अनोखी कथा बनाई जो आज मिथक के रूप में जानी जाती है।

बच्चन सिंह की मिथक संबंधी अवधारणा-"अचेतन मन के द्वारा प्रकृति के चामत्कारिक प्रभावों की अनुभूति का कल्पनात्मक सृजन ही मिथ है। यह सृजन यथार्थ के प्रति सहज-स्फूर्त

बिंबात्मक प्रतिक्रिया है।"[13] मिथक एक काल्पनिक रचना है जिसमें प्रकृति का कोई चमत्कार होता है। यह हमारे अचेतन मन की उपज है।

भारतीय विद्वानों की मान्यता में मिथक प्राचीन या ऐतिहासिक होते हुए भी उसकी स्थिति वर्तमान से जब सट जाती है तब वह जीवंत बन जाती है। मिथ का जितना गहन अध्ययन किया जाए, उतना ही वह गहनतर होता चला जाता है। ऐसा लगता है कि जीवन में वैचारिक माध्यम का ताना-बाना मिथक ही बुनता है। इसलिए अभिव्यक्ति का हर पक्ष मिथक के अंदर समाहित है, या यों कहें कि मिथक सब में अंतर्निहित है।

1.2.2. पाश्चात्त्य दृष्टिकोण

पाश्चात्त्य दृष्टिकोण: पश्चिम में ही मिथकीय व्याख्या का शुभारंभ हुआ था। पश्चिम में सन् 1825 में मुल्लर ने सबसे पहले मिथक का अध्ययन किया। लेकिन इसके पूर्व ग्रीक विद्वानों ने मिथक पर विचार करना शुरू किया था। कुछ लोग मिथक को आदिम जातियों से जोड़ते हैं। पश्चिम के विचारक मिथक संबंधी अवधारणा को ठोस आधार नहीं दे पाए। मिथक को एक प्रकार का तर्क और व्यावहारिकता के विरुद्ध की धारणा में संकुचित कर दिया गया था।

"जेम्स जार्ज फ़ेज़र, जे हरिसन तथा गिलबर्ट मुरे आदि पश्चिमी विद्वानों ने मिथक पर गहरा अध्ययन किया और उन्होंने अपने अध्ययनों से यह ज्ञात किया कि धर्म-कृत्य तथा जादू की भावना ही मिथक के मूल में है। पाश्चात्त्य चिंतकों ने मिथक के धार्मिक और अलौकिक शक्ति संबंधी कथावृत्तों को ही अधिक प्रमुखता दी।"[14] लेकिन आगे चलकर इसके मनोवैज्ञानिक और

सांस्कृतिक पक्ष के प्रतीकात्मक रूपों को अधिक प्रधानता दी जाने लगी। "विको जैसे प्रमुख वैज्ञानिक ने मिथक को सत्य के निकटवर्ती माना और अनेक विद्वानों ने विको की प्रमुख धारण के समानांतर भाषाविज्ञान, नृतत्वशास्त्र, समाजशास्त्र, धर्मशास्त्र तथा मनोविज्ञान आदि के अंतर्गत मिथक की व्याख्या करके उसे काल्पनिकता से बाहर निकालकर विशिष्ट मूल्यों की खोज की।"[15]

आई० ए० रिचर्ड्स की मिथक संबंधी अवधारणा-"मिथक मानवता के वैचारिक उद्गारों की अभिव्यक्ति है और मिथक का प्रयोजन मानवीय संवेदनाओं को साकार रूप में झंकृत करना है।"[16] मिथक मानवीय संवेदनाओं से जुड़ा होता है। मनुष्य धर्म, आस्था के कारण इनमें विश्वास करते हैं।

हेरल्ड के० हिलिंग के अनुसार-"मिथक एक ऐसा साहित्यिक माध्यम है जो किसी संस्कृति के मूल, गहनतम आस्था, विश्वास और अंतर्दृष्टि की अभिव्यक्ति के लिए विशेष रूप से अनुकूल है।"[17] मिथक के कारण ही आज हमारी संस्कृति जीवित है। आज का मनुष्य इतिहास को आदर्श मानकर अपना वर्तमान उज्ज्वल बनाने की चाह रखता है।

जार्ज कैले की मिथक संबंधी अवधारणा-"वस्तुतः मिथक का जन्म धार्मिक आस्था के गर्भ से होता है। धार्मिक लोक-विश्वास ही मिथक का जनक है।"[18] जो मनुष्य आध्यात्मिक होता है वह मिथकों के अस्तित्व पर सवाल नहीं उठाता। वह पूरी श्रद्धा से उन्हें अपनाता है और बिना किसी वैज्ञानिक तर्क के उन्हें स्वीकार लेता है।

फ्रायड लिखते हैं,"संभव है कि पुराण कथाएँ संपूर्ण देश की कल्पनात्मक इच्छा की विकृत अवशिष्ट संपत्ति के समरूप मानवता का युगीन स्वरूप है।[19] मिथक उच्चतम ज्ञान की गठरी है जो मानव के विकास में चिरकाल साथ देगी।

रेनेवेलेक की दृष्टि में- "मिथक का धार्मिक पक्ष प्रबल समर्थक है। यह कलाकार के लिए एक अभिव्यक्ति का साधन है।" [20] मिथक को धर्म से अलग नहीं किया जा सकता। इसमें अभिव्यक्ति की क्षमता होती है जो कलाकार सदैव आत्मसात करता है।

पाश्चात्य विद्वानों के मिथक संबंधी विचारों का मंथन करने से स्पष्ट होता है कि उन्होंने उसे व्यापक दृष्टिकोण से देखा है। "वे मिथक को आनुवंशिकता से लेकर जीवन की समस्त व्यावहारिकता और कलात्मकता तक में प्रतिबिंबित होता हुआ देखते हैं। इससे यह और सुनिश्चित हो जाता है कि मिथक ही मानव जीवन का केंद्र बिंदु हैं।"[21]

1.3 मिथक की विशेषताएँ और महत्त्व

1.3.1 मिथक की विशेषताएँ

प्रसिद्ध आलोचक डॉ॰ रमेश गौतम जी ने अपनी पुस्तक हिंदी नाटक : मिथक और यथार्थ में मिथक की विशेषताओं की चर्चा की है।

1. मिथक कथात्मक होता है। उसे दंतकथा कहे या धर्मगाथा, वह काल्पनिक हो या विश्वसनीय उसमें देवकथा, कल्पकथा, पुराणकथा या पुराख्यान होता है।

2. मिथक अतीत से जुड़ने का उपक्रम है एवं इतिहास को समझने का द्वार है। यह मनुष्य जाति के सांस्कृतिक विकास में अतीत का सबसे अनमोल ख़ज़ाना है। "डॉ॰ रमेश कुंतल मेघ के अनुसार- मिथक में अतीत ही शाश्वत वर्तमान है।" यही कारण है, मिथक सार्वकालीक, सर्वयुगीन और चिरंतन है। [22]

3. प्रतिकात्मकता मिथक का महत्त्वपूर्ण उपादान है, क्योंकि मिथक के सभी उपादान (कथा, घटनाएँ एवं पात्र आदि) अपना प्रतीकात्मक अस्तित्व रखते हैं। बिना प्रतीकों के मिथक की कल्पना नहीं की जा सकती।

4. मिथक सामूहिक जीवन का संचित अनुभव है, जिसे सामाजिक स्तर पर विश्वास का व्यापक आधार प्राप्त होता है। मानवीय अनुभवों का यह प्रामाणिक दस्तावेज है। आदिम काल से लेकर आज तक मानव का इतिहास मिथकों में पूर्णतः सुरक्षित है।

5. मिथक सामूहिक जीवन की धरोहर है और व्यापक लोक-स्वीकृति सत्य है। मिथक असत्य या काल्पनिक कथा नहीं, बल्कि मनुष्य के अनुभव और यथार्थ का रूप है।

6. मिथक का सृजन एक व्यक्ति द्वारा एक दिन में नहीं होता। मिथक का निर्माता अज्ञात होता है क्योंकि मिथक का निर्माण एक व्यक्ति नहीं, बल्कि सारा समाज मिलकर करता है।

7. मिथकों के नायक अथवा पात्र मानवीय नहीं होते, बल्कि उनमें हमेशा दैवी या अलौकिक चरित्रों का समावेश रहता है। भारत में मिथकीय चरित्रों की वेद, पुराण, महाभारत, रामायण आदि में भरमार है।

8. मिथक एक उद्देश्यपूर्ण कल्पना है। इसे मात्र सृष्टि एवं ब्रह्मांड संबंधी रहस्य का उद्घाटन करने वाली कथा ही नहीं माना जाना चाहिए। इसमें मानव जीवन के हर पक्ष को उद्घाटित करने की क्षमता है तथा यह समय के साथ-साथ अपने स्वरुप को बदलने की संभावना रखता है।

1.3.2 मिथक का महत्त्व

मिथक एक ऐसी कहानी या विचार होते हैं, जो लोगों के बीच प्रचलित होते हैं, परंतु जिनका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं होता। ये किसी समय या स्थान से जुड़ी हुई होती हैं और लोग उन्हें बिना किसी सबूत के सत्य मानते हैं।

हमारे जीवन में मिथकों का अत्यंत महत्त्व है। ये हमारे समाज और संस्कृति को आगे बढ़ाने में मदद करते हैं। ये हमें अपने इतिहास, धरोहर और संस्कृति से जोड़ते हैं और हमारी पहचान को मज़बूत करते हैं।

मिथक हमारी सोच और संस्कृति को समृद्ध करते हैं और हमें हमारे इतिहास से जोड़ते हैं। ये मनोरंजन का स्रोत भी होते हैं और विभिन्न संस्कृतियों को अपनाने में मदद करते हैं।

मिथक मानवीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से अपना संबंध रखते है। मिथक मानसिक, आध्यात्मिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक क्षेत्रों में अपनी भूमिका व्यक्त करता है। राजनीति में मिथक के प्रयोग की व्याख्या महाभारत के संदर्भ में की जा सकती है। राम, कृष्ण आदि को राजनीति के मूर्त भाव के रूप में देखा जा सकता है। हिरण्यकशिपु, प्रह्लाद, हनुमान आदि सभी मिथकों का प्रयोग राजनीति के क्षेत्र में सार्थक सिद्ध हुआ है। आधुनिक युग में राजनीति से संबंधित सभी प्रसिद्ध व्यक्तित्व अब मिथक बनते जा रहे हैं।

धर्म के क्षेत्र में मिथक का प्रयोग देवी देवताओं की संकल्पनाओं में हुआ है। संसार को नियंत्रित करने वाली केंद्रीय शक्ति की संकल्पना समाज में व्यापक है। वेद, उपनिषद, ब्राह्मण, पुराण के मिथक हिंदू धर्म के आधार हैं। मिथकीय कथाओं में प्रचलित होकर धर्म ने अपने स्वरूप की सृष्टि की है।

चित्रकला में मिथकीय प्रयोग ने मानवीय मिथकीय संस्कार को एक रूप प्रदान किया है। चित्रकला एवं वास्तुकला में मिथकीय स्वरूपों को अंकित किया गया है। भारत के लगभग सभी मंदिरों में मिथकीय संस्कार वास्तुकला के रूप में देखा जा सकता है। बुद्ध की प्रतिमाएँ, वैराग्य, उदासीनता, हास्य एवं प्रभामय स्वरूप का अंकन है। अजंता की गुफाएँ, पौराणिक चित्रकला, कोणार्क का सूर्यमंदिर, अयोध्या का राम मंदिर, दुर्योधन की कूट बुद्धि का परिचय देने वाला लक्षागृह अपनी संदर्भगत मिथकीय कथाओं के साथ जीते-जागते रूप प्रदान करते हैं।

विज्ञान में मिथक का प्रयोग कई मिथकीय घटनाओं में देखा जा सकता है। जैसे रामायण में लक्ष्मण के मूर्च्छित होने के बाद संजीवनी औषधि से उसका ठीक हो जाना, गांधारी को 101 संतानें होना, पुष्पक विमान की संकल्पना आदि मिथकीय प्रयोग का उदाहरण है। इन सब में आधुनिक विज्ञान का सूत्र उपलब्ध है।

संगीत में भी मिथकीय प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। संसार के सबसे प्राचीन ग्रंथ ऋग्वेद की समस्त ऋचाओं को संगीत रूप में लिखा गया है। नृत्य के संगीत में ज़्यादातर मिथक का ही प्रयोग किया गया है।

विश्व में कोई भी संस्कृति बिना मिथक के अस्तित्वहीन नहीं है। सभी महान् संस्कृतियाँ मिथकों के माध्यम से ही अपने आंतरिक दर्शन को व्यक्त करने में समर्थ होती हैं। सांस्कृतिक संदर्भों में विचारकों ने मिथक को एक प्रकार का रहस्यमय शक्ति-स्रोत माना है, जो किसी भी जाति की सांस्कृतिक अस्मिता की पहचान और अस्मिता की रक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण अस्त्र है। इसी तथ्य को विश्लेषित करते हुए प्रो॰ कल्याणमल लोढ़ा ने मिथक की महत्त्व-प्रतिष्ठा की है- विश्व की किसी भी संस्कृति के इतिहास में मिथक मानवीय जीवन को प्रेरणा, ऊर्जा और

अवधारणात्मक स्वरूप ही प्रदान नहीं करते रहे हैं, बल्कि समग्र सामाजिक संरचना का निर्धारण करना भी इनका काम रहा है। ये मनुष्यों की सामूहिक आस्था के प्रतीक हैं।"[23] किसी भी देश अथवा जाति की संस्कृति मिथकों में धरोहर के रूप में सुरक्षित है और साहित्य, कला, धर्म, दर्शन के संदर्भ में मिथक किसी भी संस्कृति के इतिहास को जानने-समझने का एकमात्र सशक्त माध्यम है।

मिथक के माध्यम से मानवीय सभ्यता एवं चेतना का इतिहास लिखा जा सकता है। कहना न होगा मिथक यथातथ्य इतिहास तो नहीं हैं लेकिन परंपरा से जातीय जीवन में एक प्रकार के इतिहास को वहन करते हैं। "व्यापक मानवीय स्वभाव की एकरूपता लिये मिथक काल, जाति और संस्कृति के सार्वभौम सत्य तक पहुँचने के लिए अत्यंत सहायक हैं।"[24] आदिम युग से अद्यतन समय तक के अनुभव, विचार, आस्था, परंपरा और सत्यानुभूतियों को मिथक अपने अंदर सुरक्षित रखता है। यह एक प्रकार का आदिम युग से आज तक की संस्कृति और वैचारिक सोच का प्रामाणिक दस्तावेज़ है, जो एक प्रकार से मानव-इतिहास की समाजवादी दृष्टि प्रस्तुत करता है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि मिथकों का महत्त्व इतिहास, संस्कृति और धार्मिक विश्वास के संदर्भ में अत्यधिक हैं। वे हमें आत्मा के अस्तित्व, समाज के नियम, और अन्य महत्त्वपूर्ण मुद्दों के बारे में सिखाते हैं। साथ ही, मिथकों का अध्ययन हमें विभिन्न विचारधाराओं और समाजों का सोच को समझने में मदद करता है। वे किसी समय का सोच और विचार का प्रतिबिंब होते हैं और हमें हमारी धार्मिक और सांस्कृतिक विरासत को समझने में सहायक सिद्ध होते हैं।

संदर्भ

1. गौतम रमेश, हिंदी नाटक मिथक और यथार्थ, अभिरुचि प्रकाशन, (1997), पृ 7

2. The Oxford English Dictionary, William Little, H.W Flower, Coulson, Thomas press Ltd., (2000), Page-962

3. मिश्र, डॉ रामपति, भारतीय काव्यशास्त्र एवं पाश्चात्य साहित्य चिंतन, शांति प्रकाशन, (प्र सं. 2001) पृ 249

4. शुक्ल आचार्य रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, 16वाँ संस्करण, हिंदी साहित्य का काल विभाजन

5. डॉ॰ नगेंद्र, मिथक और साहित्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, (प्र॰ सं॰ 1973), पृ॰7

6. प्रधान संपादक : प्रो॰ कल्याणमल लोढ़ा, सहायक संपादक : डॉ॰ शंभुनाथ, मिथक और भाषा, कलकत्ता विश्वविद्यालय, दुर्गेश प्रिंटर्स, (1981) पृ 36

7. पटेल डॉ॰ सुरेश, हिंदी नाटक और मिथक, अभय प्रकाशन, कानपुर (2016), पृ.19

8. वही॰ पृ 31

9. गौतम रमेश, हिंदी नाटक मिथक और यथार्थ, भूमिका, अभिरुचि प्रकाशन, (1997), पृ 30

10. डॉ॰ नगेंद्र, मिथक और साहित्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, (प्र. सं. 1973), पृ.23

11. सिंह डॉ॰ शंभुनाथ, मिथक और आधुनिक कविता, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, पृ. 26

12. सिंह डॉ.मालती, मिथक एक अनुशीलन, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद (1988) पृ. 42

13. सिंह डॉ॰ बच्चन, समकालीन साहित्य-आलोचना की चुनौती, वाणी प्रकाशन, दिल्ली (सं 2018) पृ 35
14. बी॰ पटेल डॉ॰ सुरेश, हिंदी नाटक और मिथक, अभय प्रकाशन, कानपुर (2016), पृ 18
15. वही, पृ 19
16. शर्मा डॉ. कृष्णदेव, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र, पृ 153
17. वही, पृ 151
18. ऐसे ऑव जार्ज कैले, पृ 97
19. फ्रायड का कथन- अग्रवाल, डॉ॰ पद्मा, प्रतीकवाद, पृ. 20
20. शर्मा डॉ॰ कृष्णदेव, भारतीय एवं पाश्चात्त्य काव्यशास्त्र, पृ 152
21. शर्मा, डॉ॰ दिनेश कुमार, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, (2006), पृ. 27
22. मेघ, डॉ॰ रमेशकुंतल, साक्षी है सौंदर्य प्राश्निक, पृ. 284
23. प्रधान संपादक : प्रो॰ कल्याणमल लोढ़ा, सहायक संपादक : डॉ॰ शंभुनाथ, मिथक और भाषा, कलकत्ता विश्वविद्यालय, दुर्गेश प्रिंटर्स, (1981) पृ 36
24. गौतम रमेश, हिंदी नाटक : मिथक और यथार्थ, अभिरुचि प्रकाशन, (1997), पृ.18

द्वितीय अध्याय

आधुनिक बोध : अवधारणा एवं स्वरूप

2.आधुनिक बोध: अवधारणा एवं स्वरूप

2.1 आधुनिक बोध : अर्थ एवं स्वरूप

आधुनिकता के सम्बन्ध में हिन्दी के लेखकों और आलोचकों का विचार स्पष्ट नहीं रहा है, क्योंकि आधुनिकता का स्वरूप जो कल था वह आज हो और जो आज है, वह कल भी हो, यह दावा नहीं किया जा सकता। कल की तुलना में आज को नया मानने जैसी स्थिति आधुनिकता के साथ नहीं है। अतः आधुनिकता का स्वरूप शाश्वत रूप से परिवर्तनशील है। वास्तव में आधुनिकता की कोई परंपरा नहीं है। पुराने को छोड़ते हुए जिसके लिए मनुष्य नियतिग्रस्त हो जाए, उससे भी आधुनिकता का कोई सम्बन्ध नहीं है। आधुनिकता के सम्बन्ध में सबसे पहले यह निर्णय लेना आवश्यक है कि आधुनिकता किसी सामयिक तथ्य का नाम नहीं है। समकालीन चेतना और जागृति को ध्यान में रखकर स्वतंत्र रूप से आधुनिकता के सम्बन्ध में सर्वव्यापक दृष्टि से विचार किया जाना चाहिए।

'आधुनिक' शब्द संस्कृत 'अद्य' अर्थात् 'आज' से व्युत्पन्न ठहराया जा सकता है। अतः 'आधुनिक', 'अद्य', 'अज्ज' संज्ञाओं के मूल से बना विशेषण शब्द है, जो व्याकरण के अनुसार 'इक' प्रत्यय लगाकर निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ हुआ-आजकल का, वर्तमान समय का, आजकल या वर्तमान से संबंधित।[1] आधुनिक विचारधारा के अनुसार- 'अधुना भवः इत्यर्थे अधुना ठञ्' अर्थात्, अब का, हाल का, आजकल का, सांप्रतिक, वर्तमान काल का।'[2]

अंग्रेजी में इस 'Modern' कहते हैं। English Oxford Dictionary में इसका अर्थ है :- relating to the present or to recent times, having or using the most up-to-date techniques or equipment, (in the arts) marked by a significant departure from traditional styles and values.[3] अर्थात- वर्तमान या हाल के समय से संबंधित, सबसे अद्यतित तकनीकों या उपकरणों का होना या उनका उपयोग करना, (कला में) पारंपरिक शैलियों और मूल्यों से एक महत्वपूर्ण विचलन द्वारा चिह्नित।

आधुनिक के लिए कई समानार्थक शब्द प्रचलित है : जैसे प्रस्तुत, वर्तमान, समसामयिक, समकालिक, अर्वाचीन, नवीन, सांप्रतिक आदि। आधुनिकता का अर्थ है- अतीत का त्याग करना तथा एक नई शुरुआत करना। इसका संबंध मानवता के आधुनिक काल या युग से है जिसे वैज्ञानिक, तकनीकी और सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों द्वारा परिभाषित किया गया था, जो यूरोप में वर्ष 1650 के आसपास शुरू हुआ और 1950 के आसपास समाप्त हुआ। आधुनिकता के दौर में लोग वैज्ञानिक प्रगति पर अधिक विश्वास और महत्व रखते थे। भारत में अठारहवीं शताब्दी से आधुनिक काल की शुरुआत मानी जाती है। 18वीं शताब्दी को आधुनिक भारत के इतिहास की शुरुआत के रूप में माना जाता है क्योंकि यह वह शताब्दी थी जब यूरोपीय शक्तियों ने भारत में राजनीतिक सत्ता हासिल करना शुरू किया था।

“आधुनिकता की धारणा समाज में परिवर्तन का सूचक है। एक व्यक्ति को आधुनिक तभी कहा जा सकता है, जब उसके अंतर्गत परिवर्तन को स्वीकार करने की क्षमता व आस्था दोनों

हों।”[4] रीतिकाल के बाद के कालखंड को आधुनिक बोध से संबंधित माना जाता है। आधुनिक बोध भारत में 18वीं सदी के बाद की परिस्थितियों में पैदा हुई चेतना है।

आधुनिकता के साथ बोध के अर्थ को जानना ज़रूरी है। बोध शब्द संस्कृत के बुध् धातु से बना है जिसका अर्थ है जानना, समझना, संबोध होना, सोने से जाग जाना, शिक्षा-परामर्श देना,सचेत होना, जानने की इच्छा होना आदि। इस तरह का सही अर्थ है ज्ञान प्राप्त होना,संबोध होना, जानकारी मिल जाना।

2.2 आधुनिकता और आधुनिकीकरण

आज हम जिस समय में जी रहे है वह कहीं न कहीं अतीत से जुड़ा होता है। हर एक युग का अपना एक आधुनिक समय होता है अर्थात् प्रत्येक युग अपने आप में आधुनिक है। हर युग में नई-नई समस्याओं का जन्म होता है और उनके समाधानों के लिए अलग-अलग रास्तों की खोज होती है। अतीत की खोज करना ही उसका गुण है। कबीर, राम, बौद्ध, कृष्ण का युग आज हमारे लिए प्राचीन है, परंतु वे अपने युग में आधुनिक रहे होंगे। आज के समय में कोरोना महामारी का विषय हमारे लिए पुराना हो चुका है लेकिन 2020 के विशेष काल में वह आधुनिक घटना थी। कबीर, तुलसी, प्रेमचंद और जयशंकर प्रसाद आज पुराने कहे जाते हैं, पर निश्चित रूप से वह अपने समय में आधुनिक थे। उनकी रचनाएँ उनके काल में आधुनिक थीं और वे उस काल की परिस्थितियों को देखकर-समझकर ही रचनाएँ लिखते थे। लेकिन आज उनकी रचनाएँ पढ़ने के बाद वह हमें वह प्रासंगिक प्रतीत होती है जिसका कारण है उस काल में और आधुनिक काल में स्थितियाँ वही है। काल परिवर्तन ज़रूर हुआ है लेकिन स्थितियों में बदलाव नहीं आया।

भारतीय समाज और साहित्य में आधुनिकता का प्रवेश नवजागरण के साथ ही हुआ। भारतीय नवजागरण की शुरुआत बंगाल से हुई थी। बंगाल में ज़मींदार परिवार में जन्मे राजा राममोहन राय (1772-1833) इसके प्रवर्तक माने जाते हैं। राजा राममोहन राय ने 1828 में बंगाल में ब्रह्म समाज की स्थापना की थी। समाज को परिवर्तित करने वाले आधुनिकीकरण से तथा समाज संस्कृति में पनपी आधुनिकता के आघात से 'आधुनिक बोध' का आविर्भाव हुआ। "विशेषतः जब क्लासिक दर्शन के इतिहास में प्रत्यक्ष विच्छेद हुआ, तब हम आधुनिकता के युग में आ गये। इतिहास-विच्छेद की सहवर्ती स्थिति ने आधुनिक बोध का आरम्भ किया तथा शक्ति (Power) के स्रोतों आदि के द्वारा आर्थिक विकास के कारण संक्रान्तिशील समाजों का आधुनिकीकरण करना प्रारम्भ हुआ।"[5]

आधुनिक शब्द ‘अधुना’ शब्द से बना है जिसका अर्थ है- वर्तमान। किसी भी देशकाल में अपने वर्तमान से संबंध रखने वाली कोई भी जीवन दृष्टि उस समय में आधुनिक कही जा सकती है। "डॉ॰ शंभुनाथ के शब्दों में, 'आधुनिकता अपने आप में कोई मूल्य नहीं है, जीवन को समझने, रचने और जानने की विकासशील दृष्टि है।"[6] यह एक ऐसी दृष्टि है जो मानव को विकासशील जीवन की ओर ले जाती है। इसके प्रभाव से मानव की उन्नति और प्रगति होती है। आधुनिकता का संबंध वर्तमान से होता है तथा वर्तमान से जुड़ी जीवन दृष्टि को समय की आवश्यकतानुसार बदलना पड़ता है। यदि हम वर्तमान की दृष्टि नहीं बदलते तो आधुनिकता परंपरा और फिर रूढ़ी में बदल जाती है। उदाहरण : सती प्रथा प्राचीन काल में आधुनिक ही थी लेकिन जैसे समय बीतता गया हमारी विचारधारा या जीवन को देखने की दृष्टि बदल गई और हमने उस प्रथा का विरोध

किया और आधुनिक काल में हम देख रहे है कि स्त्रियाँ इसके ख़िलाफ़ आवाज़ उठा रही हैं। यह परिवर्तन इसलिए संभव हुआ क्योंकि हमने आधुनिकता को अपनाया। यह भी आधुनिकता की एक नियति है। जैसे समय बीतता है वैसे कई चीज़ें बदलती है। लेकिन कुछ जीवन अपनी प्रासंगिकता को दीर्घ काल तक बनाए रखती हैं जिन्हें परंपरा या संस्कृति के रूप में देखा जाता है। उदाहरण : तीज-त्योहार, पुरखों के उपदेश, नुस्खे आदि। जो परंपराएँ संस्कृति के रूप में सामने आई थी वह आज भी जीवित है और जो परंपराएँ संस्कृति नहीं बन पाती, वे रूढ़ि बनकर कालक्रम में नष्ट हो गई। समय के साथ परंपरा नहीं बदली तो वह संस्कृति या रूढ़ियों में बदल जाती है।

आधुनिकता को इतिहास, परंपरा, समसामयिकता, विज्ञान और धर्म से जोड़कर सामाजिक संबंधों और मूल्यों में ढूँढ़ने का प्रयास करना चाहिए। "आधुनिकता का स्वभाव कस्तूरी मृग की भाँति चतुर और चंचल है। आधुनिकता देशकाल सापेक्ष एक जीवन दृष्टि है। विकासोन्मुखता इसकी प्रमुख पहचान है। देशकाल सापेक्ष होने का अर्थ ही है, विकासशील होना-परिवर्तनशील होना।"[7] आधुनिकता का संबंध परिवर्तन से है। जब हम परिवर्तन स्वीकार करेंगे तब जाकर हम हमारे जीवन में आधुनिकता को स्थान दे पाएँगे।

मानवीय सभ्यता के आरम्भ में आदि मनुष्यों ने जब पत्थरों के औज़ारों का विकास किया था तब वह उस समय की अत्याधुनिक घटना थी। बादमें यातायात के साधनों के रूप में घोड़ों और बैलगाड़ियों का आविष्कार भी उस समय में आधुनिक था। हाल ही में हुए चंद्रयान की घटना आज के समय में आधुनिक है लेकिन दस-बीस साल बाद वह पुरानी हो जाएगी और तब आधुनिकता कुछ और होगी। 'काल' की गति के साथ चीज़ें बदली है लेकिन आधुनिकता का

स्वरूप वैसे का वैसा है। मनुष्य सदैव ही जिज्ञासु प्राणी रहा है जिसके कारण वह नई-नई चीज़ों की खोज करता रहता है। इसी जिज्ञासा और जागरूकता ने मानवीय चिन्तन के नए-नए आयामों को विकसित किया और नए आविष्कार बन गए।

आधुनिक मनुष्य प्राचीन परंपराओं सामाजिक प्रारूपों एवं सांस्कृतिक संबंधों को छोड़कर, उसे नवीन रूप देता है। वह अपने समय से संघर्ष करता है, उससे जूझता है और अपने लिए सार्थक की रचना करता है। इस तरह आधुनिक होने के लिए प्रगतिशील चेतना आवश्यक है क्योंकि हर युग आधुनिक मनुष्य को जन्म देता रहा है और हर युग अपने-आप में आधुनिक रहा है। इस बात को स्पष्ट करते हुए डॉ० रमेश कुन्तल मेघ लिखते हैं, "आधुनिक होना आधुनिक मनुष्य का एकाधिकार नहीं रह जाता, क्योंकि आधुनिक मनुष्य अर्जुन, कौटिल्य, कबीर भी हुए हैं और इसके पहले भी आधुनिक युगों की कौंध हुई है।"[8]

आधुनिकीकरण (मॉर्डनाइज़ेशन) का सामान्यतः शाब्दिक अर्थ नवीनीकरण है। सामाज में, परिवार में, सामाजिक संबंधों, सभ्यता, रहन-सहन आदि में शीघ्र गति से नवीनीकरण हो रहा है। पाश्चात्त्य देश की तुलना में भारत में उतनी मात्रा में आधुनिकीकरण नहीं हुआ। देश के मुट्ठीभर समाज तक ही यह आधुनिकता सीमित है। आधुनिकीकरण कुछ पूँजीपतियों, नौकरशाहों और आभिजात्य वर्गों का है, जो एक आदत, एक फ़ैशन, एक सभ्यता के रूप में है। इसका मुख्य कारण यह है कि हमारा देश अन्य देशों की तुलना में तकनीकी, शिक्षा, राजनीति और विज्ञान की दृष्टि से पिछड़ा हुआ है। दूसरा कारण यह भी है कि हमारी संस्कृति और परंपरा की जड़ें इतनी व्यापक रूप से फैली हुई हैं कि उसका आधुनिकीकरण होने में समय लगेगा। तीसरा कारण यह है कि

भारतीय बहुसंख्यक गाँव में निवास करते हैं और विज्ञान की जो कुछ उपलब्धियाँ होती है वह उन तक नहीं पहुँच पाती। नगरों-महानगरों में रहने वाले लोग ही इससे परिचित हो पाते हैं। आधुनिकीकरण ही रूपांतरित होकर आधुनिकता बन जाती है और आधुनिक लेखक उस विशेष परिवेश में उत्पन्न समस्याओं को आत्मसात् करके अपनी लेखनी में अभिव्यक्त करता है। इस प्रकार आधुनिकीकरण आधुनिकता को अनोखी दृष्टि प्रदान करता है।

2.3 आधुनिक बोध का महत्त्व

"आधुनिकता-बोध आज के सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना के मूल में निहित एक दृष्टि या यथार्थ का चित्रण है। प्राचीन सामाजिक प्रतिमानों, संबंधों, संस्कृति, परंपराओं आदि के विरूद्ध संघर्ष को ही आधुनिकता कहते है।"[9] इतिहास से कटकर खड़े होने की कोशिश आधुनिकतावाद है। आधुनिकतावादी मनुष्य धर्म और आस्था से दूर होता नज़र आ रहा है वह मिथकों में विश्वास नहीं करता। वह आधुनिकीकरण के प्रभाव से वैज्ञानिक ढंग से सर्वेक्षण कर, खरे-खोटे की परख करता है।

आधुनिक बोध को सूत्र रूप में या सीमित शब्दावली में समझने के लिए हम कह सकते हैं कि यह 19वीं शताब्दी के प्रथम चरण में जन्मी इतिहासपरक वैज्ञानिक एवं प्रगतिशील चेतना है। आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की महान शक्तियों से आधुनिकता बोध को बल मिला, वह अपने प्रबल व उज्ज्वल रूप में हमारे सामने आया। डॉ॰ रामधारी सिंह दिनकर के अनुसार, "आधुनिकता बोध बौद्धिकता के प्रति प्रतिक्रिया है, क्योंकि बौद्धिकता ही हमें अपने परिवेश से निकाल कर अपने विकास और भविष्य के बारे में सोचने के लिए प्रेरित करती है।"[10] बिना बौद्धिकता के

आधुनिकता का आगे बढ़ना असम्भव है। आदिकाल से लेकर आज तक हमने जो भी विकास किए हैं, वह सब बौद्धिकता का ही परिणाम है। यह एक मानसिक दृष्टि है जो हमें कुछ नवीन सोचने के लिए प्रेरित करती है।

आधुनिकता जीवन के प्रति प्रवृत्तिवादी बौद्धिक चिंतन धारा है। जैसे ही हमारे सामने नए अन्वेषण आते हैं, हम उसपर चिंतन करते हैं, जिससे बुद्धि विकसित होती है। आधुनिकता तार्किक, वैज्ञानिक दृष्टि एवं संदेहयुक्त जिज्ञासु मानसिकता को महत्त्व देती है। मानव सतत कुछ नया सीखने-जानने के प्रयास में रहता है। आधुनिकता आंतरिक अनुभूतियों की काल्पनिक अभिव्यक्ति है। नई चीज़ों को खोजने या बनाने के लिए कल्पना की आवश्यकता होती है, जो वास्तव में मौजूद नहीं उसकी केवल कल्पना ही की जा सकती है।

आधुनिकता परंपरा की ही एक कड़ी है। आज हम जिसको आधुनिकता कहते हैं भविष्य में वह परंपरा कही जाएगी। डॉ॰ इंद्रनाथ मदान इसके संदर्भ में लिखते है, "आधुनिकता में कभी अनिरंतरता का बोध है तो कभी परंपरा का कभी अपरंपरा की बात है तो कभी परंपरा से नए स्तर पर जुड़ जाने की बात है। आधुनिकता की प्रक्रिया में प्रश्नचिह्न की निरंतरता है जो इसके अंदाज़ और मिज़ाज दोनों को बदलती रही है और बदल रही है।"[11] आधुनिकता में व्यक्ति की चेतना श्रेष्ठ है। मनुष्य अपने विवेक, अपनी दृष्टि और रूचि को सब कुछ मानता है। आधुनिकता में भावना के स्थान पर विवेक को तथा आदर्शमयता के स्थान पर आकांक्षा को महत्त्व दिया जाता है। आधुनिक बोध एक वैचारिक दृष्टि है जो मनुष्य को आधुनिक समाज से जोड़ती है। इसके साथ ही वह जड़ता का विरोध भी करती है तथा मनुष्य को पूर्णता की ओर ले जाती है। आधुनिकता,

आधुनिक कला को लक्ष्य मानती है। आधुनिकता में महत्त्वपूर्ण से अधिक सार्थकता और सुंदरता से अधिक प्रमाणिकता पर बल दिया जाता है। यह आधुनिकता की विशेषता है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि आधुनिक बोध का स्थान हमारे जीवन में महत्त्वपूर्ण है। यह हमें विश्व के विभिन्न पहलुओं को समझने और उनसे जुड़ने की क्षमता प्रदान करता है। यह हमें विकास और समृद्धि की दिशा में अधिक सक्षम बनाता है और समस्याओं का समाधान करने में मदद करता है। आधुनिक बोध से हम नए विचारों और नई प्रौद्योगिकियों का समर्थन कर सकते हैं, जो समाज को आगे बढ़ाने में मदद करते हैं।

संदर्भ

1. सं० बाहरी, डॉ० हरदेव, राजपाल हिंदी शब्दकोश, राजपाल एन्ड सन्ज, दिल्ली (2009) पृ० 84
2. सं० द्वारकाप्रसाद शर्मा, संस्कृत-शब्दार्थ-कौस्तुभ, लाला रामनारायण लाल प्रकाशन, इलाहबाद (1928) पृ 98
3. The Oxford English Dictionary, William Little, H.W Flower, Coulson, Thomas press Ltd., (2000), Page-130
4. मिश्र, डॉ० उन्मेष, आधुनिक हिंदी काव्य संवेदना के शिखर, पीयूष प्रकाशन, दिल्ली 2012, पृ० 15
5. अग्रवाल विपिन कुमार, आधुनिकता के पहलू, लोकभारती प्रकाशन, 2020, पृ० 17
6. शंभुनाथ
7. तिवारी अजय, आधुनिकता पर पुनर्विचार, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, (2012) पृ० 28
8. कुंतल मेघ, डॉ० रमेश, आधुनिकता और आधुनिकीकरण, अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली (1969)
9. सिंह दिनकर, डॉ० रामधारी, आधुनिक बोध, पंजाबी पुस्तक भंडार, नई दिल्ली (1973), पृ 26
10. वहीं, पृ 73
11. मदान, डॉ० इंद्रनाथ, आधुनिकता और हिंदी साहित्य, राजकमल प्रकाशन प्रा० लि० नई दिल्ली, (1978) पृ० 70

तृतीय अध्याय

मिथक नाटकों में आधुनिक बोध

अध्याय 3 : मिथक नाटकों में आधुनिक बोध

3.1अंधा युग

'अंधा युग' पाँच अंकों में विभाजित गीति नाट्य है जिसकी रचना डॉ० धर्मवीर भारती ने की है। इसकी कथावस्तु महाभारत के उत्तरार्द्ध अर्थात् महाभारत के अठारहवें दिन की संध्या से लेकर प्रभास तीर्थ में कृष्ण की मृत्यु की घटना तक संयुक्त है। इस कृति का परिचय देते हुए स्वयं भारती जी कहते हैं-"इस दृश्य काव्य में जिन समस्याओं को उठाया गया है, उसके सफल निर्वाह के लिए महाभारत के उत्तरार्द्ध की घटनाओं का आश्रय लिया गया है। अधिकतर कथा-वस्तु प्रख्यात है, केवल कुछ ही तत्त्व उत्पाद्य है। कुछ स्वकल्पित पात्र और स्वकल्पित घटनाएँ है।"[1] इस काव्य-नाटक का उद्देश्य महाभारत की कथा को दोहराना नहीं है, बल्कि इसके माध्यम से अमर्यादा, अनास्था और मूल्यहीनता पर प्रकाश डालना है। कथा विकास के लिए भारती जी ने काल्पनिक पात्रों एवं घटनाओं का सहारा लिया है, लेकिन इसका भी ध्यान रखा है कि मूल-कथा के साथ कोई छेड़छाड़ न हो।

"डॉ० नगेंद्र ने हिंदी साहित्य का इतिहास में लिखा है-"इस कथा को चुनने का मूल प्रयोजन युद्ध जन्य वर्तमानकालीनता को प्रासंगिकता देना है। किंतु इसकी उपलब्धि केवल वर्तमानता के कारण नहीं है, बल्कि जब-जब युद्ध होगा ऐसी ही अवसादपूर्ण त्रासद स्थितियाँ उत्पन्न होंगी और विघटित मूल्यों के संदर्भ में मनुष्य को नये मूल्यों की तलाश करनी होगी।"[2] 'अंधा युग' आज के संदर्भ में मानव-मूल्यों के विघटन की कहानी है। वर्तमान युग अंधेपन का शिकार हो गया है जिसमें स्थितियाँ, मनोवृत्तियाँ और आस्थाएँ विकृत हो गई है। जीवन की मर्यादाएँ टुकड़ो में बिखर गई

हैं। “अंधा युग में आज के विश्व के एक ऐसे ज्वलंत और व्यापक प्रश्न को उठाया गया है जो न केवल आधुनिक मनुष्य को नैतिकता, विकृति और मूल्य-भ्रंश के संबंध में सोचने को विवश करता है, बल्कि वह स्वयं मानवता के अस्तित्व पर भी प्रश्न चिह्न लगा देता है।”[3] आधुनिक मनुष्य अपनी नैतिकता भूल गया है। उसके भीतर के मानवीय मूल्य ख़त्म हो चुके हैं और वह अपने स्वार्थ के लिए किसी भी हद तक जा सकता है। कौरव-पांडवों की युद्ध कथा के द्वारा भारती जी ने अंधा युग में मानवीय मूल्यों को स्थापित करने का प्रयास किया है। “नाटककार ने अमर्यादा, हिंसा, पशुता, असत्य और दासता- इन तत्त्वों को नकारा है और मर्यादा, अहिंसा, मानवता, सत्य, स्वातंत्र्य और मानवीय मूल्यों को प्रतिष्ठित किया है।”[4] समाज में यदि मानवीय मूल्य ही समाप्त हो गए तो मनुष्य पशुता पर उतर आएगा। उसकी संवेदनाएँ खत्म हो जाएगी। भारती जी ने मिथकीय पात्रों के माध्यम से मानवीय मूल्यों के महत्त्व की ओर संकेत किया है। वे आज की पीढ़ी को यह संदेश देते हैं कि वे अपने पुरखों द्वारा सिखाए मूल्यों की रक्षा करें।

अंधा युग सन् 1954 में लिखा गया था जब विश्व-शक्तियाँ दो गुटों में बँट चुकी थी, द्वितीय विश्वयुद्ध की प्रलयंकारी स्थिति अभी भी शेष थी और विश्व तीसरे महायुद्ध की आशंका से त्रस्त था। अंधा युग में एक ओर महाभारत के अंधे स्वार्थी पात्र हैं और ठीक समानांतर अमरीका आदि देशों की अंधी सरकारें हैं। इस प्रकार अंधा युग में भारती जी ने महाभारत कथा के उस मर्मबिंदु का चुनाव किया है जो द्वितीय महायुद्धोतर मानवीय नियति और मानवीय संस्कृति से मेल खाता हो। जिस प्रकार महाभारत के युद्ध के बाद भय, कुंठा, निराशा, पराजय और निरर्थकता का

वातावरण छा गया था, ठीक वैसी ही स्थिति द्वितीय विश्वयुद्ध के विध्वंस के पश्चात् आधुनिक युग की थी।

प्रथम अंक : कौरव नगरी : प्रथम अंक में कौरवों की पराजय के बाद सुनसान हुई कौरव नगरी का वर्णन मिलता है। इसमें कौरव-पांडव के पक्षों के विघटन होने तथा अंधेपन की विजय के साथ-साथ द्वापरयुग के पतन का संकेत मिलता है। कौरव के महल में घूमते दो प्रहरी के बातचीत से कौरव राज्य के नाश का पता चलता है। इस बीच विदुर प्रवेश करते हैं जो युद्ध की घटनाओं की जानकारी के लिए संजय की प्रतीक्षा कर रहे होते हैं। उसके बाद विदुर अंतःपुर में गांधारी और धृतराष्ट्र से मिलने जाते हैं। विदुर उनके पास पहुँचकर कौरवों द्वारा किए मर्यादाहीन और अनैतिक आचरण के बारे में धृतराष्ट्र को बताते हैं। धृतराष्ट्र स्वीकार करते है कि जन्मांध होने के कारण वे मर्यादाओं के पालन में असफल रहे। इसी बीच जयकार करता हुआ वृद्ध याचक प्रवेश करता है। यह वही ज्योतिषी है, जिसने बहुत पहले कौरवों के विजयी होने की भविष्यवाणी की थी। भविष्यवाणी के ग़लत होने का दोष वह कृष्ण को देता है, जिन्होंने अपने अनासक्त कर्म से नक्षत्रों की गति को मोड़ दिया। अंक के अंत में दोनों प्रहरी दास-वृत्ति से ग्रस्त जीवन की चर्चा करते है।

दूसरा अंक- पशु का उदय : इस अंक का आरंभ संजय के प्रवेश से होता है। वह जंगल में भटक गया है। इस समय उसकी भेट कृतवर्मा से होती है। संजय कृतवर्मा को अर्जुन द्वारा किए गए कौरवों के विनाश का समाचार सुनाता है। वह इस बात से चिंतित है कि वह यह सत्य गांधारी और धृतराष्ट्र को कैसे बताएगा। उसी समय टूटे हुए धनुष को लेकर अश्वत्थामा प्रवेश करता है। वह पाण्डवों द्वारा छलपूर्वक किए गए पिता द्रोणाचार्य के वध से परेशान होने के कारण पाण्डवों

के वध की प्रतिज्ञा करता है। तभी उसे वन मार्ग से आता हुआ संजय दिखाई पड़ता है और वह पांडव समझकर उसका गला दबोच देता है। तभी कृपाचार्य और कृतवर्मा अश्वत्थामा को रोक लेते है और संजय को उससे मुक्त कराते हैं। इसी समय अश्वत्थामा को कौरव नगरी से लौटता हुआ भविष्य वक्ता वृद्ध याचक दिखाई पड़ता है, जिसका अश्वत्थामा तत्काल वध कर देता है। अश्वत्थामा का गुस्सा देखकर कृपाचार्य उसे सोने का आदेश देते है।

तीसरा अंक- अश्वस्थामा का अर्द्धसत्य : तीसरे अंक में कौरवों की पराजय व उनकी दुखद दशा का वर्णन है। इसी अंक में युयुत्सु का आगमन होता है। वह कौरव होकर भी पांडवों के पक्ष में लड़ा था इसलिए वह आत्मग्लानी से ग्रस्त दिखाई देता है। गांधारी युयुत्सु पर कठोर व्यंग्य करती है। उसी समय संजय गदा युद्ध में दुर्योधन की पराजय का समाचार देता हैं, जिसे सुनकर कौरव नगरी में हाहाकार मच जाता है। अश्वत्थामा कृपाचार्य को बताता है कि भीम ने गदा युद्ध में अधर्मपूर्वक दुर्योधन की जंघा पर प्रहार किया जो गदा युद्ध के नियमों के विरुद्ध है। वह आवेश में आकर पाण्डवों के वध की प्रतिज्ञा करता है।

चौथा अंक- गांधारी का शाप : इस अंक में गांधारी द्वारा कृष्ण को दिए शाप की चर्चा की है। आशुतोष महादेव अश्वत्थामा से प्रसन्न होकर उसे पांडव शिविर में प्रवेश करने की अनुमति देते हैं। अर्जुन और अश्वत्थामा के बीच युद्ध छिड़ जाता है। दोनों ब्रह्मास्त्रों का प्रयोग करते है। अश्वस्थामा का ब्रहमास्त्र उत्तरा के गर्भ पर गिरता है किंतु कृष्ण शिशु को जीवित करने का आश्वासन देते हैं और अश्वत्थामा को शाप देते हैं कि वह पीप घावों से युक्त शरीर वाले दुर्गम

स्थानों पर भटकता रहेगा। गांधारी युद्ध भूमि में दुर्योधन के अस्थि-पंजर को देखकर कृष्ण को शाप देती है, तुम स्वयं अपने वंश का विनाश करके किसी साधारण व्याध के हाथ मारे जाओगे।

पाँचवा अंक - विजय : एक क्रमिक आत्महत्या : इस अंक में पांडव-राज्य की स्थापना का उल्लेख है। युधिष्ठिर का राज्याभिषेक होता है। राज्य के सिंहासन पर बैठे युधिष्ठिर स्वयं को पराजित मानते है। भीम के कटु वचनों से आहत होकर धृतराष्ट्र तथा गांधारी वन चले जाते हैं, जहाँ आग लगने के कारण दोनों मर जाते है। युयुत्सु दोनों पक्षों से प्रताड़ित होते हैं और अपमानित होकर भाले से आत्महत्या कर लेते है।

समापान - प्रभु की मृत्यु : अंतिम अंक के बाद समापन होता है। इसका शीर्षक प्रभु की मृत्यु दिया गया है। झाड़ी के पीछे से निकलकर जरा नाम का व्याध कृष्ण के बाएँ पैर पर मृग का मुख समझकर बाण चला देता है। जिससे प्रभु की मृत्यु होती है।

भारती जी ने 'अंधा युग' में संजय, युयुत्सु, और अश्वत्थामा के माध्यम से आस्था-अनास्था का प्रश्न उठाया है। “भारती जी ने ऐसी वैयक्तिक संकुचित विचारधारा वाले पात्रों से यह बात सिद्ध करनी चाही है कि यदि आज भी मानव इन मूल्यों को सही दृष्टिकोण में परख नहीं पाया और उनको सुरक्षित रखने के प्रयत्न नहीं किया, तो जैसा युद्ध महाभारत का हुआ था, जैसा प्रथम और द्वितीय विश्वयुद्ध ने विनाश किया था, वैसा ही युद्ध और विनाश फिर से होने की संभावना है।”[5] वर्तमान में यह देखा जा सकता है कि धर्म, सांप्रदायिकता, धर्मनिरपेक्षता आदि को लेकर विभिन्न पक्षों में और संस्थाओं में मतभेद है। आज भी दुर्योधन, धृतराष्ट्र, गांधारी, युयुत्सु अलग-अलग रूपों में अलग-अलग स्थानों पर मौजूद हैं। अणु बम, तरह-तरह के आधुनिक मिसाइलों, शस्त्रों

आदि का निर्माण अभी भी जारी है। एक देश अपने प्रतिस्पर्धी देश को नीचा दिखाने के लिए उसके ख़िलाफ़ षड्यंत्र रचता है।

अंधायुग शीर्षक ही विश्वयुद्धों से उत्पन्न आज के मानव मूल्यों के संकटों और विकृतियों का प्रतीक है। इस नाटक का प्रत्येक पात्र मूल्य-संकट से घिरा हुआ है। भारती जी ने अपनी काव्य-प्रतिभा के बल पर इन पौराणिक चरित्रों को आज की उन्हीं विघटनकारी मनोवृत्तियों का प्रतीक बनाया है जिनमें समान-धर्मा होने के कारण युद्ध की विकृतियों के विकास पाने की पूरी-पूरी गुंजाइश थी। इस दृष्टि से गांधारी धृतराष्ट्र, संजय, युयुत्सु, विदुर और अश्वत्थामा के चरित्र महत्त्वपूर्ण हैं। इसके अतिरिक्त दुर्योधन, व्यास, कृष्ण और बलराम परोक्ष रूप में आए है।

अश्वत्थामा : "अंधों के माध्यम से कही गई ज्योति की इस कहानी में जिस प्रकार अंधकार का केंद्रीय चरित्र अश्वत्थामा है, उसी प्रकार ज्योति या जीवन का केंद्रीय चरित्र कृष्ण है।"[6] 'अंधायुग' का प्रतिनिधि पात्र है जिसके माध्यम से युद्ध से उत्पन्न कुंठा, प्रतिशोध, हिंसा जैसे पशुधर्मी मनोवृत्तियों को दर्शाया गया है। अश्वत्थामा स्वीकार करता है कि वह पशु नहीं था, उसे युधिष्ठिर के अर्द्धसत्य के विवेक ने पशु बना दिया। युधिष्ठिर ने युद्धभूमि में अश्वत्थामा के पिता को अर्द्धसत्य बताया कि अश्वत्थामा की मृत्यु हो गई। किंतु यह नहीं बताया कि वह अश्वत्थामा नाम का हाथी है या उसका पुत्र है। द्रोणाचार्य को लगा उसका पुत्र मर गया है जिसके कारण उसने शस्त्र छोड़ दिए और धृष्टद्युम्न ने उसे मार दिया। पांडवों से अपनी पिता की मृत्यु का बदला लेना ही उसके जीवन का एकमात्र लक्ष्य रह गया। उसमें प्रतिशोध और प्रतिहिंसा की भावना इतनी गहरी हुई कि उसने उत्तरा के गर्भ पर यानी भावी मानव जाति पर ब्रह्मास्त्र चलाया। उसे अपने अस्त्रों

के उपयोग से सारी धरती के बंजर पड़ जाने, मानव जाति का अस्तित्व मिट जाने की कोई चिन्ता नहीं है। अश्वत्थामा मानसिक संतुलन खो बैठता है। वह धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य, नैतिक-अनैतिक का भेद भूल जाता है। पिता की क्रूर हत्या और दुर्योधन की दीन-हीन दशा को देखकर अश्वत्थामा की मानसिक प्रवृत्ति में बदलाव आ जाता है। अब यह, वह अश्वत्थामा है जो विध्वंस, बर्बरता अनास्था, निराशा, प्रतिशोध, कुंठा, संत्रास, स्वार्थ और पशुता के भाव में लिप्त है।

आज के युद्ध में अश्वत्थामा उस विघटनकारी प्रवृत्तियों का प्रतीक है, जो अपने स्वार्थ साधन प्रतिहिंसा में सारी मानव जाति के अस्तित्व को दाँव पर लगा देता है। उदाहरण : दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान अमरीका के वायु सेना ने जापान के हिरोशिमा और नागासाकी शहर पर परमाणु बम गिराया। मनुष्य के भीतर बदले की भावना इतनी प्रखर हो गई है कि वह दया, करुणा, प्रेम जैसे मूल्यों को भूल रहा है। मनुष्य अपनी मन की शांति के लिए विध्वंस करने पर तुला है। ‘अंधा युग’ में वर्णित अश्वत्थामा के जीवन की कुरूपता को देखा जाए तो यह आधुनिक मनुष्य के जीवन की कुरूपता है। इस तरह अश्वत्थामा केवल पौराणिक पात्र नहीं है, आधुनिक मानव का प्रतिनिधि या प्रतीक बन गया है। आधुनिक मनुष्य एक ओर तो वह मनुष्यता की आकांक्षा करता है, परंतु परिस्थितियाँ उसे पशुत्व का वरण करने पर विवश कर देती है। इस संघर्ष की पीड़ा में निरंतर जीते रहना ही आधुनिक मनुष्य की नियति बन गई है। अश्वत्थामा की भाँति वह भी न तो ठीक से जी सकता है और न ही मर पाता है। वह निरंतर पीड़ा में जीने के लिए अभिशप्त है। अश्वत्थामा के माध्यम से भारती जी यह संकेत देते हैं कि आज यदि कोई व्यक्ति अथवा देश नैतिक बनने का

प्रयत्न करता है तो उसका अस्तित्व ही ख़तरे में पड़ जाता है और तब विवश होकर न चाहते हुए भी उसे अनैतिकता और बर्बरता का वरण करना पड़ता है।

धृतराष्ट्र : आज के शासन की वैयक्तिक इच्छाओं की पूर्ति ही धृतराष्ट्र का विवेक है, जिसे युद्ध के कारण मूल्यों के नष्ट होने से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। वह अंधा शासक है। वह अपने से बाहर के सत्य से अनभिज्ञ है। वह अपनी अंधी मनोवृत्ति से युद्ध को पालता है और मानव मूल्यों के विघटन में योगदान देता है। स्वार्थ ही युद्ध का कारण है। "मानवता के हित के लिए कभी युद्ध लड़ा नहीं जाता। आज के समाज में भी व्यक्तिगत स्वार्थ सर्वोपरि है जिसके कारण मानव मन उचित-अनुचित का विवेक खो बैठा है।"[7] आज समाज में धृतराष्ट्र जैसी मानसकिता हम हर जगह देखते है जो व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए वह किसी भी हद तक जा सकता है। अपना पुत्र चाहे कितना भी दुष्कर्म करें वह उसकी ग़लतियो पर परदा डालते हैं। आज का मनुष्य सत्य और प्रामाणिकता का मार्ग भूलकर अपने फ़ायदे के लिए असत्य का मार्ग अपनाता है। उदाहरण : आज हर जगह हम देख सकते हैं कि दो भाइयों में पुरखों की संपत्ति के कारण झगड़े होते हैं। महाभारत में संपत्ति तथा सत्ता के कारण युद्धभूमि पर लड़ाई हुई थी और आधुनिक युग में मनुष्य कोर्ट-कचहरी में जाकर लड़ता नज़र आता है। आज के संदर्भ में भी विजय की लालसा इसी विवेकहीनता का आश्रय लेती है। जीतने के लिए मनुष्य अपने सोचने समझने की ताक़त खो देता है।

गांधारी : गांधारी पुत्र ममता में बँधी है। गांधारी कहती है धर्म की विजय होगी और दुर्योधन ही जीतेगा। गांधारी में विवेक तो है किंतु पुत्रों की ममता में अंधी होकर वह युद्ध का विरोध नहीं कर पाती। सब नष्ट होते देखकर भी वह दुर्योधन के जीत की हठ पकड़कर बैठ जाती है।

संजय : व्यास की कृपा से संजय को दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है। अवध्य और अजेय होने का वरदान संजय के लिए शाप सिद्ध होता है। "युद्ध में किसी एक पक्ष का साथ देना सरल बात है, परंतु निष्पक्ष होकर सत्य कहना कठिन है। संजय की सत्य बोलने की विवशता इस हद तक पहुँचती है कि उसे सत्यवचनी होने की अपेक्षा मृत्यु को अपनाना उचित लगता है।"[8] आज के युग के तटस्थ राष्ट्र के विवश कार्यकर्ताओं का प्रतीक है। उसका विवेक अंधों को युद्ध का समाचार सुनाते-सुनाते निष्क्रिय हो गया है। जो नेताओं के लिए काम करते है वह विवेकशील होकर भी अपने बुद्धि का प्रयोग नहीं करते। वे जानते है कि नेता पाप, दुष्कर्म और भ्रष्टाचार कर रहे हैं फिर भी वह उन्हीं का साथ देते हैं।

युयुत्सु : अंधे धृतराष्ट्र का एक सौ एकवाँ पुत्र युयुत्सु श्रीकृष्ण को आदर्श मानकर कौरवों को असत्य और पांडवों को सत्य का पक्षधर समझकर सत्य का पक्ष लेता है। युद्ध के बाद उसे अपने माता-पिता और प्रजा की घृणा तो मिलती ही है, साथ ही उसे भीम के द्वारा भी परिहास और उपेक्षा मिलती है। "आधुनिक आचरण के विभ्रमों का प्रतीक युयुत्सु के स्वर में आस्था के प्रति गहरी अनास्था और आक्रोश है। इस प्रकार सत्य का वरण करो अथवा असत्य का, अंत में केवल पीड़ा ही मिलती है। यह पीड़ा मनुष्य के अस्तित्व की पीड़ा है।"[9] आज के संघर्ष में सत्य के नाम पर लड़ने वाले का साथ देने वाले मनुष्य का प्रतीक है। युयुत्सु आज की युद्ध-संस्कृति में सत्य के व्यर्थ बन जाने से उत्पन्न पीड़ा का प्रतीक है। वह पक्ष और विपक्ष दोनों से अपमानित और प्रताड़ित होता है। वह पांडवों की सहायता इसलिए करता है कि वे सत्य के पक्षधर हैं, लेकिन जब उन्हें पता चलता है पांडव भी सत्य के मार्ग पर नहीं चलते तब वह आहत हो जाता है। लोगों

ने गांधी जी को सत्यवादी माना लेकिन वे सत्यवादी होने का दिखावा करते थे। जिन लोगों ने उनका साथ दिया था वे उनकी अनीतियों से भरी राजनीति और अमर्यादित आचरण देखकर कुंठित हो गए। "आधुनिक व्यक्ति की संशयग्रस्तता, द्वंद्वात्मकता और अनिर्णय की त्रासदी को भारती जी ने युयुत्सु के माध्यम से अभिव्यक्त किया है।"[10]

युधिष्ठिर : इस नाटक में पांडव पक्ष में से केवल युधिष्ठिर का उल्लेख है। वे अर्द्धसत्य, रक्तपात आदि के सहारे महायुद्ध को जीतकर भी हारने की यातना का अनुभव करते हैं। अमंगल युग की आहट से वे बेचैन हैं। वे भीम के अमानुषिक विनोदों को रोक सकने में असमर्थ है। वह जीतकर भी हारे हुए हैं। "भारती जी ने युधिष्ठिर को अयोग्य शासक के रूप में उपस्थित किया है। भारती जी ने युधिष्ठिर के राज्य में आत्मघाती हासोन्मुखी संस्कृति को पनपते हुए दिखाने के लिए ऐसा किया है।"[11] युधिष्ठिर ने सत्यवादी होकर भी गुरु द्रोण की हत्या करने लिए अर्द्धसत्य का सहारा लिया और मर्यादाओं का उल्लंघन किया। आज मनुष्य ग़ैरक़ानूनी व्यवहार करते हैं, काला पैसा कमाते हैं। सच्चाई के मार्ग पर चलने के बजाय वे मर्यादाओं को तोड़ते हैं। लेकिन पूँजी होने के बावजूद वे संतुष्ट नहीं होते, उनके मन को शांति नहीं मिलती। ग़लत मार्गों से पाया धन या संपत्ति मनुष्य को चैन से जीने नहीं देती।

कृष्ण : अंधा युग में कृष्ण का चरित्र मानव-जीवन को मूल्य देने वाली आस्था का प्रतीक है जो शुभ और अशुभ, आसक्ति और अनासक्ति दोनों को एक भाव से जीता है। भारती जी ने जीवन की सार्थकता प्रस्तुत करने के लिए श्रीकृष्ण को माध्यम बनाया है। अंधकार से व्याप्त अंधे युग में अपने विवेक के आधार पर कोई निर्णय लेकर अपनी परिस्थितियों के अनुसार किसी उद्देश्य

का चुनाव कर जीवन की सार्थकता पाना ही मनुष्य के पास एकमात्र उपाय शेष रहता है। 'अंधा युग' में श्रीकृष्ण भी यही करते हैं। अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए परिस्थितिवश वे पाप-पुण्य, सत्य-असत्य, मर्यादा-अमर्यादा के समस्त दायित्वों का वहन करते हैं। उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कभी उन्हें प्रतिज्ञा भंग करनी पड़ती है, कभी मर्यादा का त्याग, कभी छल एवं असत्य का वरण भी करना पड़ता है। "अंधा युग में कृष्ण का चरित्र एक जटिल व्यक्तित्व के रूप में उभरता है जो प्रभु की अपेक्षा आधुनिक जटिल मनुष्य का प्रतिनिधित्व अधिक करता है।"[12] महान नायक श्रीकृष्ण को जो सभी मर्यादाओं, आदर्शों और सत्य के रक्षक हैं अनीति के द्वारा किसी एक पक्ष का वरण करना पड़ा।

दो प्रहरी : इसमें दोनों प्रहरी सामान्य जन के प्रतीक हैं। जीत किसी की भी हो उनकी हालत जैसे पहले थी, वैसी ही अब रहती है। उनकी मेहनत, उनकी आस्था, उनके साहस और उनके श्रम का कोई मूल्य नहीं। 'अंधा युग' के प्रहरियों को एक विकृत सभ्यता और संस्कृति की रक्षा न चाहते हुए भी करनी पड़ती है। ये न अपनी स्वतंत्रता की रक्षा कर पाते हैं और न ही वे विकृति का विरोध कर पाते हैं। इन दोनों प्रहरियों के संवाद में ऊब, व्यर्थता और अर्थहीनता के संकेत मिलते हैं। "ये दोनों प्रहरी उन करोड़ों आम आदमी के प्रतिनिधि हैं जो आधुनिकता के दबाव के कारण यंत्र के समान जीवन बिताने के लिए विवश हैं।"[13] आज के दौर में चाहे कोई भी राजनीतिक दल चुनाव जीत ले, सर्वहारा वर्ग पर उसका कोई असर नहीं होता। उनके जीवन में कोई परिवर्तन नहीं होता।

दुर्योधन : दुर्योधन प्रत्यक्षतः मंच पर नहीं आया है, किंतु उसकी स्थिति का अनुभव अन्य पात्रों के माध्यम से होता है। आधुनिक समाज में घर-घर पर महाभारत चल रहा है। इस महाभारत के केन्द्र में दुर्योधन जैसी प्रवृत्ति वाले लोगों की संख्या निरंतर बढ़ती ही जा रही है। ऐसे लोग अपने निजी स्वार्थ, सत्ता लोलुपता, पूंजी, स्त्री, भूमि आदि के लोभ में किसी भी हद तक जा रहे हैं। इसलिए वर्तमान समाज में अधिकांश लोग मर्यादाओं की सीमाओं का उल्लंघन करते हुए प्रतीत होते हैं। जहां रिश्ते-नातों का मूल्य और अधिक वीभत्स होता जा रहा है। ठीक ऐसे ही आधुनिक समाज का चरित्र भी दिखाई देने लगा है, बल्कि उससे भी भयावह स्थिति पैदा हो गई है।

'अंधा युग' में भारती जी ने युद्ध की समस्या को उठाया है। आधुनिक युग की अणु संबंधी संस्कृति ब्रह्मास्त्रों के युग से अलग नहीं है। अणु शक्ति यदि देश की सर्जनात्मक शक्ति में लगे तो नव-निर्माण का द्वार खुल सकता है, किंतु उसका यदि दुरुपयोग हो तो समस्त सृष्टि का कण-कण बिखरकर विच्छिन्न हो जाएगा। "वास्तव में 'अंधा युग' का व्यास ब्रह्मास्त्र के प्रयोग से उत्पन्न होने वाले जिस विनाशकारी और विध्वंसजन्य दुष्परिणाम की ओर संकेत कर रहा है, वह आधुनिक युग की अणु-शक्ति के प्रयोग से उत्पन्न होने वाली विकृतियों और की ओर संकेत करता है।"[14] महाभारत काल में शत्रुओं से लड़ने के लिए ब्रह्मास्त्र, तलवार आदि का प्रयोग होता था, किंतु आज के समय में अणु-बम, मिसाइल, बंदूक आदि शस्त्रों का प्रयोग होता है। वर्तमान युग में युद्धों का एक और भीषण पहलू है मानवता और मानवीय मूल्यों का विघटन। ऐसी स्थिति में कोई समझौता नहीं करना चाहता। कोई भी पक्ष अपने विवेक बुद्धि से काम नहीं लेता। ऐसे में अंधापन विजयी होता है। आधुनिक मानव के सामने भी आज न तो कोई निश्चित रास्ता है और

न ही किसी प्रकार के चुनाव की स्वतंत्रता। आधुनिक मानव की यही दायित्वहीन पीड़ा उसे मथती है।

"भारती जी ने 'अंधा युग' में यही संदेश दिया है कि मानव की संभावना पर आस्था रखनी होगी और मानवता की रक्षा केवल मर्यादापूर्ण आचरण के द्वारा ही हो सकती है।"[15] वर्तमान परिदृश्य में पौराणिक युद्ध भले ही इतिहास के पन्नों में बंद है, किंतु, उनके मूल्य आज भी प्रासंगिक हैं। समाज, परिवार और व्यवस्था के बीच जो युद्ध छिड़ा हुआ है, वह किसी बर्बर अंधा युग से कम नहीं है। निजी स्वार्थ ने लोगों को इतना अंधा बना दिया है कि अब वे किसी भी अनैतिक कार्य को करने से नहीं झिझकते हैं। अधिकांश लोग अपनी निजी स्वार्थों की पूर्ति के लिए घोर अपराध करने से भी नहीं हिचकिचाते। धर्मवीर भारती का नाटक 'अंधा युग' एक दूरदृष्टि से अभिभूत नाटक है, जो समाज में व्याप्त विसंगतियों पर करारा प्रहार करता है। यह कहना गलत नहीं होगा कि भारती ने इस रचना में समाज में घटने वाली घटनाओं, मानव मन की स्थिति, अपने दृष्टिकोण और पौराणिक कथा- चारों का सुंदर समन्वय किया है।

3.2 एक कंठ विषपायी

एक कंठ विषपायी दुष्यन्त कुमार द्वारा रचित गीति नाट्य है जो सन् 1963 में प्रकाशित हुआ। इसमें रचनाकार ने भगवान शिव के पौराणिक आख्यान के द्वारा आधुनिक युग की राजनीति, भूख हड़ताल, युद्ध की विभीषिका, अमानवीयता और पुरानी परंपराओं के खंडन आदि प्रवृत्तियों को उभारा है।

"अंधायुग तथा एक कंठ विषपायी में कवि ने युद्ध के भयानक परिणामों को दिखाकर दूसरे विश्व युद्ध की विभीषिका और तृतीय विश्वयुद्ध के विनाशकारी परिणामों की चेतावनी दी है। साथ ही शांति की आवश्यकता को दर्शाया है। अंधायुग में युद्ध हुआ है और एक कंठ विषपायी में युद्ध टाला गया है।[16] दुष्यंत कुमार ने भारती जी की गीतिनाट्य की शैली से प्रभावित होकर इसकी रचना की है। अंतर केवल इतना है कि अंधायुग में पांडव-कौरवों का युद्ध होता है और एक कंठ विषपायी में ब्रह्मा की विवेक बुद्धि के कारण युध्द टल जाता है।

इस कृति की कथा चार दृश्यों में विभक्त है। प्रथम दृश्य में दक्ष प्रजापति शिव से क्रोधित है क्योंकि उसे लगता है शिव ने उसकी बेटी सती का अपहरण करके उससे विवाह किया है। वह शिव का अपमान करने के लिए यज्ञ का आयोजन करता है और उसमें शिव-सती आमंत्रित नहीं करता। सती पितृ मोहवश शिव के साथ यज्ञ के आयोजन में उपस्थित हो जाती है। वीरिणी के द्वारा बार-बार समझाए जाने के बावजूद दक्ष अपने यज्ञ में सती और शंकर का अपमान करता है। सती अपने पिता द्वारा अपने पति का अपमान सहन नहीं कर पाती और क्षुब्ध होकर आत्मदाह

कर लेती है। बेटी के आत्मदाह की सूचना जब वीरिणी को मिलती है, तो वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ती है।

दूसरे दृश्य में विष्णु, ब्रह्मा, इंद्र और वरुण सती के भस्म होने और महादेव शंकर के रौद्र रूप तथा उनके गणों द्वारा दक्ष-यज्ञ को विध्वंस किए जाने की चर्चा करते हैं। चारों वीरभद्र के प्रहार, नंदी का दुर्निवार अस्त्रों से संघातक लक्ष्य और अन्य शिव अनुचर गणों व भृत्यों द्वारा किए गए भयानक रक्तपात का स्मरण कर वे दुःखी होते हैं। दक्ष की मृत्यु सर्वहत ध्वस्त नगर की स्थिति का व्यंग्यात्मक शैली में वर्णन करता है।

तीसरे दृश्य में कंधे पर सती-शव लादे हुए शंकर आते हैं। शंकर की इस अतिरिक्त मोह ग्रस्तता पर वरुण और कुबेर को आश्चर्य होता है। शिव सती के साथ जिए गए जीवन की याद करते हैं। वे क्रोधित होकर यह संकल्प करते हैं कि यदि शाम तक सती को जीवन नहीं मिला तो फिर महाकाल का तांडव होगा। अन्त में शिव अपना डमरू बजाकर तांडव और युद्ध के निश्चय की सूचना देते हैं।

चौथे दृश्य में ब्रह्मा और इन्द्र में युद्ध की अनिवार्यता और निस्सारता पर विवाद होता है। इन्द्र युद्ध के पक्ष की पुष्टि करते हैं जब कि ब्रह्मा युद्ध को प्रतिहिंसावादी बताकर उसका विरोध करते हैं। इस विवाद के दौरान इन्द्र लोक में शिव सेना के द्वारा रक्तपात का समाचार आता है। देव लोक की जनता विवाद से ऊबकर निर्णय की मांग करती है। विष्णु सेनापति का दायित्व अपने हाथों में लेकर रण के मारू वाद्य बजाने की घोषणा करते हैं और शिव के चरणों में प्रणाम बाण

छोड़ते हैं। विष्णु का यह बाण प्रणाम और युद्ध की चुनौती का वाहक था। शिव ने प्रणाम स्वीकार करके अपनी सेना लौटा ली।

एक कंठ विषपायी में रचनाकार का उद्देश्य सती शिव की पौराणिक कथा का वर्णन करना नहीं है वरन् इस कथा को आधुनिक भाव बोध से प्रेरित करना है। रचनाकार की दृष्टि में परम्परा और पीढ़ियों से चली आई रुढ़ियों में आस्था रखना कल्याणकारी नहीं है। जीवन को सार्थक बनाने के लिए हमें नए जीवन मूल्यों का अन्वेषण करना चाहिए।

आधुनिक बोध

एक कंठ विषपायी में रचनाकार ने पौराणिक कथा के आधार पर आधुनिक परिस्थितियों का चित्रण किया है। शंकर इस कृति के नायक है। शंकर प्रजापति दक्ष व राजमहर्षि वीरिणी की पुत्री सती से विवाह करते हैं। इस विवाह में वह दक्ष की अनुमति नहीं लेते। यहाँ शिव आज की युवापीढ़ी के प्रतिनिधि के रूप में नज़र आते है। आधुनिक समाज में युवक अपने माता-पिता की अनुमति को गौण समझकर प्रेम विवाह करते है। कन्या का विवाह पिता की पसंद अथवा अनुमति से होने की प्राचीन परंपरा को तोड़कर सती ने शंकर से प्रेम विवाह किया। प्रेम विवाह आधुनिक युग की ज्वलंत समस्या है। विवाह वर वधू का होता है पर उसका निश्चय दोनों के माता-पिता एवं अन्य परिवारजन करते हैं। कन्या मूक पशु के समान उसको सौंप दी जाती है, जिसे उसका पिता पसंद करता है। माता-पिता यह समझने का प्रयत्न नहीं करते कि जीवन साथी चुनने का अधिकार

एवं योग्यता नई पीढ़ी को है। लड़के-लड़की द्वारा अपनी पसंद से किए गए प्रेम-विवाह को वे बहकाने की संज्ञा देते हैं और अपना अपमान समझते हैं।

शंकर सती से बहुत प्रेम करते हैं। सती की मृत्यु के पश्चात वे अपना संतुलन खोकर मानवीय पीड़ा के पाश में कसते है। डॉ० मालती सिंह लिखती हैं- परंपराओं का खंडन जितना कठिन होता है, उससे अधिक कठिन है परंपराओं की टूटन को झेलना। परंपरा-मोह का त्याग तथा नए मूल्यों की स्वीकृति सहज नहीं होती है। प्रायः परंपराभंजक भी व्यक्तिगत भावनाओं के स्तर पर परंपरा-पोषक बन जाता है। मानवी व्यक्तित्व के इस दो विरोधी पहलुओं के वैचारिक एवं भावनात्मक द्वंद्व की अभिव्यक्ति शिव के माध्यम से हुई है। परंपराभंजक शिव परंपरा पोषक बन कर सती के शव का मोह त्याग नहीं पाते। निर्जीव शव अपनी सड़ाँध से वातावरण को दूषित करता है। रूढ़, जर्जरित तथा मृत परंपराएँ भी मृत शरीर की तरह समाज में सड़ाँध उत्पन्न करती हैं।"[17] शंकर के चरित्र का यह रूप सामान्य मानवी है। हम परंपराओं या रूढ़ियों में इतने बंधे है कि हम नवीनता को स्वीकार नहीं करना चाहते है। उदाहरण : जाति प्रथा, सती प्रथा जैसी कई कुप्रथाओं को लोग परंपरा से निभाते आए है। लेकिन यह परंपराएँ हमारे जीवन को नकारात्मक बनाती है। हमें इन परंपराओं का खंडन करके आगे बढ़ना चाहिए। सती-शिव प्रणय संबंध की अंतिम परिणति सती के आत्मदाह से होती है। शिव सती के मृत शरीर को कंधे पर उठाए हुए युग को भस्म करने की हुंकार भरते है। वस्तुतः यह मृत परंपराओं और जड़ रूढ़ियों के शव को वर्तमान युग में भी सीने से चिपकाए रखने की घटना की ओर संकेत करता है।

रमेश गौतम के शब्दों में, "एक कंठ विषपायी का शंकर पर्याप्त अंतर्विरोधों से ग्रस्त है जो आधुनिक मानव के मानसिक अंतर्द्वंद्व को व्यंजित करने की क्षमता रखता है।"[18] मानव का अंतर्द्वंद यह है कि वह परंपराओं से मुक्ति नहीं पाना चाहता और नई परंपराओं को स्वीकार नहीं करना चाहता। आधुनिक समय में मानव-जीवन अनेक समस्याओं में डूबा हुआ है, मृत परम्पराओं के प्रति उसका मोह, विवेक एवं ज्ञान को नष्ट कर रहा है। शिव के द्वारा सती के मृत शरीर से प्रेम यानी परम्परा एवं रूढियों से प्रेम है, जो सत्य तक पहुँचने में बाधा है। मोह मैं पड़ा हुआ मनुष्य अंधे के समान हो जाता है कि वह मृत्यु की सच्चाई को भी नहीं देख पाता और परिवर्तन के कारण असन्तुष्ट और क्रोधित हो उठता है।

शिव शंकर की दशा ऐसी है कि वे मृत्यु की सच्चाई को भी नहीं मान रहे हैं और सती के मोह के कारण वे मृत शव को सुंदर और सनातन भी कह रहे हैं तथा उसके साथ चिपके हुए भी है। "वास्तव में अधिकांश लोग शिव है और उसके हृदय से चिपकी हुई जर्जर परम्पराएँ एवं मृत प्रायः रूढ़ियाँ सती का शव है।"[19] परंपरा का खंडन एवं नवीन मूल्यों की स्थापना ऐसे लोगों को सहन नहीं होती। सती के सड़े गले शव के समान चाहे मृत परंपरा की दुर्गंध सारे वातावरण में भर जाए और उससे सबका दम घुटने लगे, पर वे अपने को बदलना नहीं चाहते।

"शंकर के कंठ की अपार क्षमताएँ है। केवल वे ही विषपायी हैं। अतः रोज की तरह पुरानी परंपरा के टूटने तथा नई परंपरा के पोषण का विष पान कर लेते हैं। परंपरापोषी बनकर दक्ष के समान एक और युद्ध, रक्तपात मचाने की अपेक्षा युद्ध छोड़कर वापस लौटते हैं।"[20] आज के मानव

के भीतर शंकर जैसी प्रवृत्ति का होना अनिवार्य हैं। जो परंपराएँ हमें कष्ट देती है उन्हें भूलकर हमें आगे बढ़ना चहिए और नई परंपराओं को स्वीकारना चाहिए।

इस काव्य नाट्य में सर्वहत आज की जनता का प्रतिनिधित्व करता है। "डॉ॰ रणजीत लिखते है- सर्वहत को दुष्यंत कुमार ने आधुनिक शोषित और बुभुक्षित प्रजा का प्रतीक बनाया है और उसके मुँह से बहुत-सी खरी-खरी बातें कहलवाई हैं।"[21] राजतंत्र अथवा प्रजातंत्र में प्रजा का अस्तित्व शेष नहीं रहता। शासक किसी भी गतिविधि में उसका कोई सहभाग आवश्यक नहीं समझता। आज की शासन व्यवस्था भी इससे अलग नहीं है। राजनीतिक नेता जनता के मत को तुच्छ समझती है। वे सामान्य जन के पक्ष को नहीं समझते। सर्वहत आँख खुलने पर रक्तस्राव सहकर दो रोटी पाने की आशा में भटकता है। उसे संवेदना नहीं रोटी चाहिए। वह न मिलने पर वेदना मिटाने के लिए मदिरा चाहता है। वह ब्रह्मा और विष्णु से इन परिस्थितियों का उत्तर माँगता है। यहाँ रचनाकार ने मार्क्सवादी विचारधारा का उदाहरण प्रस्तुत किया है। सामंतवादी व्यवस्था के निराकरण से ही सर्वहारा वर्ग की भूख मिटेगी।

प्रजापति दक्ष परंपरा ग्रस्तता और सामंती व्यवस्था का प्रतीक है। वे व्यक्तिगत हठ और मिथ्या अहंकार से शिव को अपमानित कर युद्ध की स्थिति उत्पन्न करते है। वे विरिणी से कहते है, "वरण किया था अथवा शंकर ने उसका अपहरण किया था?"[22] वे शंकर द्वारा सती के वरण को अपहरण मानते हैं। उनको लगता है शंकर ने उनकी पुत्री को फुसलाकर, विविध प्रलोभन देकर फँसाया है। पिता अपनी बेटी के लिए सदैव अच्छा चाहते हैं और वह चाहते हैं कि उनकी बेटी किसी अच्छे पुरुष के हाथों में जाए। आज समाज में युवा अपने मन-मरज़ी से पेश आते हैं और

माता-पिता के रोकने पर क्रोधित हो जाते हैं। वीरिणी दक्ष को समझाती है कि शंकर उनके जमाता है इसलिए सारी ग्लानि भूलकर वे उन्हें स्वीकार कर लें। किंतु दक्ष उसकी बात नहीं मानता। माता का हृदय कोमल होता है। जहाँ पिता पुत्री के लिए उचित-अनुचित के भेद को समझते हुए निर्णय लेते है वहाँ माता पुत्री की ख़ुशी में ही अपनी ख़ुशी समझती है।

सती आधुनिक भारतीय नारी एवं प्रतीक रूप में मृत परंपरा का प्रतीक है। पिता दक्ष के अहंकार के कारण शंकर अपमानित होते है और यज्ञ आयोजन में अपने पति की अवज्ञा सहन न करने के कारण स्वयं यज्ञ में कूदकर आत्मदाह कर लेती है। आज की नारी में भी हम सती का रूप देख सकते हैं। वह स्वयं का अपमान सह सकती है लेकिन अपने पति का अपमान कदापि नहीं। नारी अपने पति के लिए कई बलिदान देती है। शायद इस प्रसंग की प्रेरणा से ही सती प्रथा का आरंभ हुआ। आज भी कुछ हिस्सों में सती प्रथा का चलन है, जिसको पूर्णतः समाप्त करने की आवश्यकता है।

ब्रह्मा युद्ध को अशांति तथा आत्मघात मानने वाले प्रजातांत्रिक शासन व्यवस्था के विवेकशील राष्ट्रध्यक्ष है। इंद्र के शंकर से युद्ध ठानने पर वे उन्हें समझाते हैं कि प्रजा की रक्षा युद्ध के द्वारा नहीं होती। वे युद्ध को आत्मसुरक्षा नहीं सामूहिक आत्मघात कहते है। वे इंद्र को समझाते हैं कि युद्ध के कारण कई समस्याएँ पैदा हो सकती हैं। देवसेना के विरोध को वे चर्चा द्वारा सुलझाना चाहते है। वे क्रोधित कुबेर और वरुण को संयम में रहने के लिए कहते है। समाज में ऐसे बहुत कम लोग होते हैं जो समझौता करते है। किसी समस्या पर बहस करने के बजाय उस समस्या को समझकर उस पर समाधान करना समझदारी का काम है। ब्रह्मा के विपरीत इंद्र, वरुण, कुबेर व

शेष है जो सत्ता-विरोधी गुट के नेताओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। आधुनिक युग के विरोधी पक्ष के नेताओं की तरह शासकों को बार-बार युद्ध के लिए उत्तेजित करते हैं। इंद्र ऐसे सेनाध्यक्ष के प्रतीक है, जो विरोधी पक्ष के नेताओं के साथ मिले हैं। आज राजनीति में भी विवाद होते हैं। कोई एक पक्ष अपने विरोधी पक्ष को नीचा दिखाता है और उन्हें विवाद के लिए प्रेरित करता है।

एक कंठ विषपायी में दुष्यंत कुमार ने जर्जर रूढ़ियों और परंपराओं के शव से चिपटे हुए लोगों का प्रतीकात्मक रूप से आधुनिक पृष्ठभूमि में चित्रण किया है। "आधुनिक युग हमारी परंपरागत मर्यादाओं व मान्यताओं के विघटन का साक्षी है। यहाँ रोज मान्यताएँ व मर्यादाएँ परिवर्तित होती हैं, टूटती हैं और फिर बनती हैं। मान्यताएँ व मर्यादाएँ जहाँ तक हमारी सहायक रही हैं वहाँ तक उनका पालन करना तर्क संगत है।"[23] परंपराओं का रुढ़िरहित होकर ही पालन करना चाहिए। मानव को सकारात्मक दृष्टि से मर्यादाओं व मान्यताओं का विघटन करना चाहिए और उसी में उसकी सार्थकता है।

दुष्यंत कुमार ने पौराणिक संदर्भ को नवीन परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत कर नवीन चेतना को व्यक्त किया है। इस कथा में दक्ष एक अहंकारी शासक के प्रतीक हैं। धन संचय के प्रतीक कुबेर हैं, सर्वहत शिव परंपरा से पीड़ित और समस्याग्रस्त जनता का प्रतिनिधित्व करते हैं। जब शासक का कार्य व्यवहार प्रजा विमुख हो जाता है तब प्रजा की संवेदना उसे पद से हटाने की ताक़त रखती है। विष्णु द्वारा छोड़ा गया प्रणाम बाण शक्ति का प्रतीक है, जो समाधान के हेतु छोड़ा जाता है। वीरिणी और सती आधुनिक नारी की प्रतीक है। जिन्होंने पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था के प्रति असंतोष प्रकट किया है। कवि ने राष्ट्रनियामकों की हृदयहीनता तथा विरोधियों की भूमिका का

भी यथार्थ चित्रण किया है। इंद्र, वरुण, कुबेर, जो विरोधी नेताओं के प्रतीक है, देश को युद्ध की आग में झोंककर अपनी रोटी सेकना चाहते हैं। ब्रह्मा, विष्णु जनकल्याणकारी है, हर चरित्र प्रतीकात्मक है।

3. 3 लहरों के राजहंस

लहरों के राजहंस यह नाटक मोहन राकेश द्वारा रचित एक ऐसा मिथक नाटक है जिसमें गौतम बुद्ध के सौतेले भाई नंद के दीक्षा ग्रहण करने तथा नंद की पत्नी सुंदरी के गर्व खंडित हो जाने की कथा है। इसमें नंद के आंतरिक द्वंद्व का चित्रण किया है जिसमें एक तरफ़ वह आध्यात्मिक शांति है और दूसरी तरफ़ सांसारिक सुख। वह अपने सौतेले भाई गौतम बुद्ध के विचारों से प्रभावित है और आध्यात्म का मार्ग अपनाना चाहता है ; लेकिन अपनी पत्नी सुंदरी के विचार से उसका निर्णय बदल जाता है। वह निश्चय नहीं कर पाता कि उसे इन दोनों में से किस मार्ग को चुनना है। "नाटक की मुख्य घटना है -नंद का भिक्षु बन जाना। नंद के मन में प्रवृत्ति और निवृत्ति की भावनाओं में चलने वाला द्वंद्व नाटकीय संघर्ष की भूमिका प्रस्तुत करता है।"[24] प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों विपरित तत्त्व है जिसके अंतर्विरोध से टकराहट पैदा होती है।

'आषाढ़ का एक दिन' नाटक के बाद मोहन राकेश जी का यह दूसरा मिथक नाटक है। उन्होंने इस नाटक में गौतम बुद्ध, यशोधरा, नंद तथा सुंदरी जैसे मिथकीय पात्रों का आश्रय लिया है जिससे पाठकों या दर्शकों पर नाटक का अधिक प्रभाव पड़ता है। "नाटककार ने लहरों के राजहंस की भूमिका में लिखा है- नंद और सुंदरी की कथा एक आश्रय मात्र है, क्योंकि मुझे लगा कि इसे समय में परिक्षेपित किया जा सकता है। नाटक का मूल अंतर्द्वंद उस अर्थ में यहाँ भी आधुनिक है जिस अर्थ में आषाढ़ का एक दिन के अंतर्गत है।"[25] यदि लेखक चाहते तो नंद की जगह कोई और पात्र लेकर नाटक लिख सकते थे। लेकिन पाठक आध्यात्म से जुड़े विषय पढ़ना

पसंद करते हैं और गौतम बुद्ध एक ऐसे पात्र हैं जिन्होंने बौद्ध धर्म का प्रसार किया और कई लोगों को उनकी शिक्षा से प्रभावित किया। इसलिए नाटककार ने नंद के पात्र का चुनाव किया।

यह नाटक तीन अंकों में विभक्त है। पहले अंक में सुदरी कामोत्सव की तैयारी एवं स्वयं का श्रृंगार करती है। नंद आकर उसे सूचित करता है कि आज कामोत्सव में अधिक व्यक्ति न आ सकेंगे क्योंकि नगर के अधिकतर व्यक्ति गौतम बुद्ध के दीक्षा कार्यक्रम में भाग लेने जा रहे हैं। ये दोनों कार्यक्रम राजमहल व नदी तट पर एक ही समय आयोजित किए गए हैं। कामोत्सव में कोई व्यक्ति नहीं आता इसलिए सुंदरी क्रोधित होती है।

दूसरे अंक में अव्यवस्थित कक्ष में सुंदरी झूले में सोई होती है। श्यामांग के ज्वर के प्रलाप सर सुंदरी जाग जाती है। नंद सुंदरी के श्रृंगार में सहयोग करता है और उसी समय अलका यह संदेश लाती है कि भगवान गौतम बुद्ध भिक्षा के लिए द्वार पर आए थे और दो बार याचना करने के बाद लौट गए हैं। नंद इसके लिए क्षमा माँगने के लिए गौतम बुद्ध के पास जाता है और शीघ्र लौट आने का वादा करता है। इस अंक में दुविधाग्रस्त नंद की स्थिति का यथार्थ चित्र प्रस्तुत है।

तीसरे अंक का आरम्भ सुंदरी और अलका के वार्तालाप द्वारा कमलताल से राजहंस के उडने की सूचना है। सुंदरी नंद का इंतजार करते करते सो जाती हैं। नंद गौतम बुद्ध से केश कटवाकर, जंगल में बाघ से लड़कर, घायल होकर लौटते हैं। नींद से जगकर सुंदरी जब नंद को केश कटवाए हुए देखती है तो उसे अस्वीकार करती है। नंद घर से बाहर जाते हैं और सुंदरी का अहंकार खंडित हो जाता है।

आधुनिक बोध

इस नाटक में नंद के माध्यम से आज के समाज के मानव का अंतर्द्वंद चित्रित किया है। “नंद और सुंदरी ऐतिहासिक पात्र होते हुए भी नितांत आधुनिक है क्योंकि उनके द्वारा आज के मानव की बेचैनी, विवशता और आंतरिक संघर्ष प्रेषित किया गया है।”[26] इन पात्रों का सहारा लेकर आज के स्त्री-पुरुष संबध, आपसी रिश्ते, उनके बीच होते मनमुटाव आदि का चित्रण नाटक में हुआ है।

नाटक का मुख्य पात्र नंद एक ऐसी स्थिति के बीच खड़ा है जहाँ उसे एक निर्णय लेना पड़ता है। गौतम बुद्ध और सुंदरी दोनों उसे प्रभावित करते हैं जिससे वह अपना अस्तित्व खो देता है। उसके सामने दो मार्ग खुलते हैं और वह सही चुनाव नहीं कर पाता। “मंजु रॉय इसके संदर्भ में लिखते है - नंद पूरे नाटक में ऐसा व्यक्ति दिखाई देता है, जो अपने आप को भी जानने में असमर्थ है जिसका अंत यह होता है कि न ही वह गौतम बुद्ध के साथ जा पाता है और न ही वह सुंदरी के पास रह पाता है। आत्मरक्षा और आत्मविनाश दोनों प्रवृत्तियों के बीच जीता हुआ वह अपने आप को असहाय, असमर्थ पाता है।”[27] नंद इन दो आकर्षणों के बीच अपने आप से टकराकर अंदर से टूट जाता है। उसका यह टूटना आज के मनुष्य के टूटने की संवेदना है।

इस नाटक में नंद के अंतर्द्वंद को चित्रित करने के लिए कई प्रतीकों का सहारा लिया है। नंद अपने आप को एक मरणासन्न मृग की स्थिति में पाता है जो अपनी ही क्लांति से मर जाता है। यहाँ मृग की थकान नंद की मानसिक थकान की ओर संकेत करता है। उसी प्रकार सुंदरी का प्रसाधन करते समय 'बुद्ध शरणं गच्छमि' के स्वर से नंद के हाथ से दर्पण टूटकर गिर जाता है।

“मोहभंग की स्थिति में दर्पण के टुकडे-टुकडे नंद के मन के विभाजन को प्रकट करते है, यहाँ पर विभाजन केवल नंद का ही नहीं, सुंदरी के अहं का भी है।”[28] वह सुंदरी का प्रसाधन अधूरा छोड़कर गौतम बुद्ध के पास जाता है। सुदंरी भी उसे जाने देती है क्योंकि उसे पता चलता है कि नंद का ध्यान उसकी तरफ़ नहीं है। उसका शरीर यहाँ है लेकिन मन गौतम बुद्ध के बारे में सोच रहा है। वह दीक्षा लेने का निर्णय लेकर गौतम बुद्ध के पास जाता है और अपने केश मुडा लेता है लेकिन सुंदरी का ख़याल आते ही वह भिक्षा पात्र लेने से इनकार करता है। वहाँ से घर न जाते हुए जंगल जाकर व्याघ्र से युद्ध करता है और घायल अवस्था में सुंदरी के पास लौट आता है। “मोहन राकेश जी इसके संदर्भ में लिखते हैं - नंद का केश मुडा लेना, फिर व्याघ्र से युद्ध करना, फिर लौट आना, फिर चले जाना उसके संशय और अंतर्द्वंद्व को प्रकाशित करता है।” [29] इस प्रकार मृग की थकान, दर्पण का टूटना, व्याघ्र से युद्ध आदि घटनाओं के माध्यम से नंद के मन की हलचल का बख़ूबी चित्रण किया है।

आज के व्यक्ति की स्थिति नंद से अलग नहीं है। वह अपनी कामकाजी जीवन की भागदौड़ में इतना व्यस्त रहता है कि वह अपने घर-परिवार पर ध्यान नहीं दे पाता। उदाहरण : विदेश में नौकरी और घर-गृहस्थी इन दोनों के मध्य वह फँस जाता है। वह अपना अस्तित्व खो देता है और अपने लिए जीना भी भूल जाता है। वह जब कामपर होता है तो घर की चिंता सताती है और जब घर में होता है तब काम की चिंता लगी रहती है। विदेश में नौकरी करने के लिए उसे अपना परिवार त्यागना पड़ता है और यदि परिवार के साथ उसे रहना है तो उसे नौकरी त्यागनी पड़ती है। आज

का मनुष्य इसी चुनाव की यातना में जीता है और उसकी स्थिति नाटक के पात्र नंद से अलग नहीं है।

नंद की पत्नी सुंदरी को अपने सौंदर्य का घमंड है और उसे लगता है वह अपने आकर्षण से नंद को अपने मोहजाल में बांधकर रखेगी। उसका मानना है स्त्री चाहे तो अपने पति को वश में रख सकती है। "वह अलका से कहती है -नारी का आकर्षण पुरुष को पुरुष बनाता है, तो उसका अपकर्षण उसे गौतम बुद्ध बना देता है।"[30] गौतम बुद्ध की पत्नी यशोधरा के प्रति उसका स्पर्धा भाव है। वह जानबूझकर उसी दिन कामोत्सव का आयोजन करती है जिस दिन यशोधरा दीक्षा लेने वाली होती है। सुंदरी आधुनिक स्त्री का प्रतिनिधित्व करती है। आज की स्त्री अपने सौंदर्य पर या अपने आत्मनिर्भर होने पर घमंड करती है। वह चाहती है उसका पति उसके अनुसार कार्य करें। वह अपने बराबर की स्त्रियों से स्पर्धा करती है। सुंदरी ने इस कहावत को साबित किया है कि औरत ही औरत की दुश्मन होती है।

नाटक में नंद-सुंदरी, बुद्ध-यशोधरा तथा अलका-श्यामांग के माध्यम से स्त्री-पुरुष संबंधों का भी चित्रण किया है। नंद सुंदरी के सौंदर्य पर आसक्त है और उससे बहुत प्रेम करता है। वह कभी उसकी इच्छा के विरुद्ध काम नहीं करता। सुंदरी केवल भोग-विलास में लिपटी है तथा नंद को अपने वश में रखना चाहती है। उनके रिश्ते में प्रेम की मिठास नहीं है, यह प्रेम केवल बाहरी दिखावट का प्रेम है। श्यामांग और अलका का प्रेम इससे अलग है। उनके प्रेम में एक दूसरे के प्रति आदर-सम्मान है। श्यामांग के ज्वर में अलका उसकी सेवा करती है, वह सुंदरी से कहती है कि वे

श्यामांग की ग़लती माफ़ करें। गौतम बुद्ध और यशोधरा के प्रेम में त्याग भाव है। गौतम बुद्ध के साथ यशोधरा भी दीक्षा लेती है। इनके प्रेम में समर्पण है।

आज के समाज में स्त्री-पुरुष के बीच के संबंध बदलते जा रहे है। वे शारीरिक कुंठाएँ या भोग-विलास को ही प्रेम मानते है। वे एक-दूसरे के बाहरी सौंदर्य से प्रभावित होते है। सच्चा प्रेम वही होता है जिसमें आदर तथा सेवा भाव हो, त्याग या एक दूसरे के प्रति समर्पण भाव हो। आधुनिक मनुष्य अपनी संवेदनाएँ खो रहा है और उसने प्रेम की परिभाषा ही बदल दी है। नाटक में स्त्री-पुरुष के संबंधों का जो चित्रण हुआ वह आज के दाम्पत्य जीवन का साक्षात उदाहरण है।

"लहरों के राजहंस आनंद एवं रस का नाटक नहीं वरन् द्वंद्व-तनाव और उद्वेग का नाटक है। नंद तथा सुंदरी दो ऐसे बिंदु है, जो अंत में स्वयं को अनिश्चय की स्थिति में पाते है। सुंदरी प्रतिबद्धता के पथ पर चलकर कोई निश्चित बिंदु तलाश नहीं कर पाती जबकि नंद आरंभ से ही द्वंद्वग्रस्त है। अंत में वे भी स्वयं को उपहासास्पद स्थिति में पाते हैं।"[31] इस नाटक में नंद और सुंदरी के माध्यम से आधुनिक व्यक्ति के द्वंद्व और तनाव की स्थिति का चित्रण किया है। निर्णय लेने की अक्षमता मानव को अनिश्चय की स्थिति में डाल देती है।

राजहंस, नंद और सुंदरी के समानांतर है, लहरें उनकी परिस्थितियाँ है। नाटक में राजहंसों का जोड़ा है। ताल में खिले ओस कणों से शोभित कमल राजभवन के ऐश्वर्य को रेखांकित करते हैं। दूर से सुनाई देता मधुर कुजन नंद और सुंदरी का प्रेमालाप है। पत्थर फेंके जाने पर हंसों का आहत होना और उनके पंखों की फड़फड़ाहट नंद और सुंदरी के मधुर जीवन में होने वाली उथल-पुथल, संबंधों के तनाव, उनकी छटपटाहट का पूर्व संकेत है। कमल ताल से एक राजहंस का

उड़ना नंद का राजपाट त्यागने की ओर संकेत करता है। आज भी स्थितियाँ ऐसी ही है। ढेर सारा ऐश्वर्य होने पर भी मनुष्य संतुष्ट नहीं है। वह मन की शांति चाहता है और मोह भी चाहता है। स्त्री-पुरुष संबंध केवल भोग-विलास तक ही सीमित रह गए है उनमें कोई संवेदना नहीं। आज का मनुष्य नंद से अलग नहीं वह दुविधाग्रस्त है और उचित निर्णय लेने में सक्षम नहीं है।

3.4 एक और द्रोणाचार्य

एक और द्रौणाचार्य शंकर शेष द्वारा रचित एक ऐसा नाटक है जिसमें आधुनिक तथा पौराणिक कथाएँ समानांतर चलती हैं। इसमें मुख्य रूप से समाज में शिक्षा व्यवस्था में हो रहे भ्रष्टाचार पर करारा व्यंग्य किया है। इसके साथ-साथ इसमें राजनीतिक दाँवपेच, बलात्कार जैसी समस्याओं को भी उजागर किया है। "वर्तमान सत्ता व्यवस्था के दबाव ने शिक्षक को, एक मनुष्य आत्मा को विवश मौन में बदल दिया है। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार, पक्षपात, असंगति विसंगति के मध्य झूलते जीवन आदर्श, शिक्षक समुदाय के असहाय, बेबस और अपाहिज चरित्र को पौराणिक कथा के माध्यम से आकलित किया है।"[32] शिक्षक को एक आदर्श चरित्र के रूप में देखा जाता है, लेकिन सत्ता और व्यवस्था के दबाव से वह पाप करने के लिए मजबूर होता है और सच्चाई का साथ नहीं देता।

एक और द्रौणाचार्य दो भागों में विभक्त है। नाटक के पूर्वाध में आधुनिक पुष्टभूमि की कथा है जिसमें अरविंद एक गैर-सरकारी कॉलेज में अध्यापक है। वह सिद्धांतवादी है। एक दिन अरविंद कॉलेज के प्रेसिडेंट के बेटे राजकुमार को परीक्षा में नक़ल करते हुए पकड़ता है और उसकी रिपोर्ट प्रिंसिपल के पास भेज देता है। अरविंद की पत्नी लीला और उसका सहयोगी यदू अरविंद को राजकुमार की रिपोर्ट युनिवर्सिटी तक न भेजने की सलाह देते है क्योंकि ऐसा करने पर उसकी नौकरी जा सकती है। लेकिन अरविंद अपने निर्णय में अटल रहकर रिपोर्ट युनिवर्सिटी तक भेजना चाहता है।उसकी पत्नी लीला अपनी अर्थदंशित गृहस्थी को सामने रखते हुए उसे रिपोर्ट वापस लेने के लिए कहती है। प्रिंसिपल भी प्रत्यक्ष रूप से अरविंद को कोई सलाह न देकर परोक्ष रूप से

उसकी पत्नि लीला से अरविंद को समझाने के लिए कहता है। साथ ही रिपोर्ट वापस न लेने के कारण कॉलेज बंद हो जाने और नौकरी छूट जाने की संभावनाओं से परिचय कराता है। इनसे अलग तरीके अपनाते हुए प्रेसिडेंट प्रत्यक्ष रूप से अरविंद से मिलता है और रिपोर्ट वापस लेने के बदले में अरविंद को प्रिंसिपल बना देने का आश्वासन देता है। इस प्रकार रिपोर्ट वापस लेने के लिए अरविंद पर दबाव डाला जाता है। दूसरी तरफ़ उसका प्रिय विद्यार्थी चंदू वही रिपोर्ट यूनिवर्सिटी तक भेजने के लिए उससे प्रार्थना करता है। आग्रह, सुझाव, धमकियों, आश्वासनों से घिरा अरविंद असमंजस में पड़ जाता है। उसके मन में व्यावहारिक एवं सैद्धांतिक, यथार्थ और आदर्श के बीच अंतर्द्वंद्व मच जाता है। वह निर्णय लेने में असमर्थ होता है और अकेले बैठकर इसपर विचार करता है। उसी समय उसे विमलेन्दु की याद आती है जो उसी की तरह आदर्शवादी प्रोफ़ेसर था और जो व्यवस्था के ख़िलाफ़ जाने के कारण मारा गया। विमलेंदु की शरीराकृति उसके सामने आती है और वह भी उसे यही राय देता है कि सैद्धांतिक आदर्श आदि सब बेवक़ूफ़ी की बातें हैं। यथार्थ पहचानकर निर्णय लेना ही बुद्धिमानी है। इसी के साथ प्रथम अंक पूरा होता है।

अरविंद की कथा के समानांतर द्रोणाचार्य की कथा चलती है। द्रोणाचार्य अपने समस्त पांडित्य और कौशल्य के बावजूद गृहस्थी चलाने, रोटी, कपड़ा और मकान जैसी जीवन की न्यूनतम ज़रूरतों को पूरा करने में असमर्थ है। वह अपनी पत्नि कृपी के कहने पर अपने बाल-सखा द्रुपद के यहाँ जाता है। द्रुपद के पास धन-मान पाने की आशा मे गया द्रोणाचार्य अपमानित होकर लौटता है। अपमान की तीव्रतर पीड़ा उसे प्रतिशोध की भावना से भर देती है। वह निश्चय

कर लेता है कि "मैं अब ऐसी पीढ़ी तैयार करूँगा जो केवल युद्ध की भाषा बोलेगी।"[33] इस प्रकार वह एक ओर अपनी पत्नि तथा बेटे की दुर्दशा से आतंकित होता है, तो दूसरी ओर प्रतिशोध की ज्वाला से तप्त होता है। ऐसी स्थिति मे भीष्म उसके सम्मुख राजगुरु के पद को ग्रहण करने का प्रस्ताव रखते हैं। द्रोणाचार्य की दुविधा जानकर कृपी ही इस प्रस्ताव को स्वीकृति देती है और उसे समझाती है कि इससे अनाज और कपड़े की समस्या हमेशा के लिए मिट जाएगी। कुछ सम्मान से रह सकेंगे और द्रुपद से बदला भी ले सकेंगे। राजगुरु के पद को प्राप्त करते ही द्रोणाचार्य की विचारधारा सिद्धांतों के विपरीत दिशा में प्रवाहित होने लगती है। सत्ता और सुविधाओं से पोषित द्रोणाचार्य के भीतर अहंकार जागृत होता है। उसके शिष्य अर्जुन से बेहतर धनुर्धर और कोई न बने इसलिए वह निम्न जाति के एकलव्य से उसका अँगूठा गुरुदक्षिणा में माँग लेता है। इस प्रकार वह एकलव्य की जाति को खत्म करके द्रुपद से बदला लेता है।

नाटक के उत्तरार्ध की शुरुआत लीला के टेलीफोन पर बातचीत से होती है। इसी से पता चलता है कि अरविंद कॉलेज का प्रिंसिपल बन गया है और लीला अपनी मनचाही सुविधाओं को पाकर खुश है। अरविंद अपने नए 'स्टेटस' से कतई प्रसन्न नही है। सत्ता के नीचे वह इतना अधिक दब गया है कि अब वह बड़े-बड़े निरर्थक शब्द थूकने वाला नपुंसक बुद्धिवादी हो गया है। कॉलेज में एक और घटना घटती है। अनुराधा पर बलात्कार करने की कोशिश में राजकुमार पकड़ा जाता है। अनुराधा का प्रेमी चंदू अरविंद से मदद माँगता है। प्रेसिडेंट इस घटना को दबा देने की सलाह देता है और न मानने पर वह अरविंद को गबन के आरोप में जेल भेजने की धमकी देता है। एक बार फिर अरविंद अपनी आत्मा की संवेदना को कुचलकर सत्ता के आगे नतमस्तक

हो जाता है और राजकुमार के ख़िलाफ़ कोई कार्रवाई नहीं करता जिससे निराश और हताश होकर अनुराधा आत्महत्या कर लेती है। इस आधुनिक कथा के समानांतर द्रोणाचार्य की कथा सामने आती है। द्रोणाचार्य भी राजकीय अन्न की दासता के कारण द्रौपदी चीरहरण के समय मौन साधे रहे। अगर वे चाहते तो कौरवों को रोक सकते थे, किंतु उनकी बिकी हुई न्यायबुद्धि और विवेक में इतना साहस ही बाकी न था कि खुलकर विरोध कर सकें।

इसके बाद एक तीसरी घटना सामने आती है जहाँ एक उँचे क्लिफ से गिरकर प्रेसिडेंट की मृत्यु हो जाती है और उसकी हत्या का आरोप अरविंद पर लगाया जाता है। अरविंद को कैद होती है। प्रेसिडेंट की मौत हत्या न होकर एक दुर्घटना है इसका गवाह है चंदू होता है। चंदू के बयान पर ही अरविंद की जिंदगी निर्भर करती है। किन्तु अदालत में चंदू हाँ या ना के निर्णायक रूप में जवाब नहीं देता। वह युधिष्ठिर की तरह 'अश्वत्थामा अवश्य मारा गया। वह नर था या कुंजर....' के समान ही अर्द्धसत्य कहता है। अंततः अरविंद का भी वही हाल होता है जो द्रोणाचार्य का हुआ। पौराणिक एवं आधुनिक कथाओं की समान्तरता को कायम रखते हुए नाटककार अंत में अरविंद को एक और द्रोणाचार्य साबित करता है। विमलेंदु की शरीराकृति उसके सामने उभरती है। वह कहता है, "तू द्रोणाचार्य है। कौरवों की भाषा बोलने वाला, युद्ध में भी उसका साथ देने वाला। तू किस बात का प्रोफ़ेसर ? तू द्रोणाचार्य है।"[34] इस प्रकार नाटक यही समाप्त हो जाता है।

आधुनिक बोध

एक और द्रोणाचार्य नाटक में वर्तमान शिक्षक की तुलना महाभारत कालीन द्रोणाचार्य से की है जिसने एक शिक्षक को अपने सिद्धांतों से समझौता करके अन्याय सहने की परंपरा दी। नाटककार ने पौराणिक कथा के माध्यम से आधुनिक समस्या को उजागर करने का प्रयास किया। "प्रस्तुत नाटक व्यक्ति की उस अवस्था को हमारे सामने रखता है जिसमें वह अपने और अपने परिवार की अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए हर प्रकार का समझौता करने के लिए विवश हो जाता है।"[35] इस नाटक में नाटककार ने वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार, पक्षपात, स्त्री शोषण, प्रतिशोध, राजनितिक घुसपैठ तथा आर्थिक एवं सामाजिक दबावों के चलते निम्न मध्यवार्गीय व्यक्ति के असहाय बेबस चरित्र को उद्घाटित किया है। महाभारत कालीन प्रसिद्ध पात्र द्रोणाचार्य के जीवन प्रसंगों को आधार बनाकर वर्तमान विसंगति को दिखाया गया है।

द्रोणाचार्य और अरविंद सिद्धांतवादी और आदर्शवादी शिक्षक होने के बावजूद भ्रष्टाचार करने के लिए मजबूर हो जाते हैं। वे अपनी गृहस्थी को सँभालने तथा नौकरी जाने के डर से सत्ता और व्यवस्था का शिकार हो जाते है। द्रोणाचार्य द्रुपद से बदला लेने के लिए उसकी जाति के एकलव्य से उसका अँगूठा छीन लेता है। उसी प्रकार प्रेसिडेंट चंदू के पिता के ख़िलाफ़ चुनाव लड़ रहे थे और चंदू के पिता की छवि ख़राब करने के लिए चंदू के नक़ल करने की झूठी रिपोर्ट यूनिवर्सिटी भेज देते हैं।

आधुनिक युग में हर जगह द्रोणाचार्य भरे पड़े हैं। हर क्षेत्र में भ्रष्टाचार की संख्या बढ़ती ही जा रही है। शिक्षा व्यवस्था में अपनी नौकरी बचाने के लिए शिक्षक वही सब करते हैं जो उनके

अधिकारी उनको बताते है। "एक पौराणिक मिथक का सहारा लेकर नाटककार ने आधुनिक बुद्धिजीवी वर्ग का परदाफ़ाश किया है, जो सत्ता और व्यवस्था से जुड़कर अपने स्वार्थ साधते साधते निरीह और विवश बन गया है। आधुनिक शिक्षक और बुद्धिजीवी वर्ग की इस स्वार्थी, सुविधावादी और अवसरवादी प्रवृत्ति को प्रोफ़ेसर अरविंद ने चरित्र द्वारा नाटककार ने प्रभावशाली रूप में चित्रित किया है। आपातकालीन सुविधावादी राजनीति के संदर्भ में इस पौराणिक प्रसंग की विशेष सार्थकता है।"[36] राजनीतिक कार्यकर्ता अपनी नौकरी बचाने के लिए काले कारनामे करते हैं। काला धन कमाने के लिए नेता निम्न वर्ग का शोषण करते है। नौकरी देने के लालच में उनसे पैसे हड़पते हैं। मध्यवर्गीय नौकरी करने वाला आम आदमी इस बीच फँस जाता है। अपने मालिक की हाँ में हाँ मिलाने के अलावा वह कुछ नहीं कर पाता

अपने प्रतिस्पर्धी से बदला लेने के लिए आज लोग किसी भी हद तक जा सकते हैं। नेता चुनाव जीतने के लिए अपने प्रतिस्पर्धी नेता की छवि ख़राब करते हैं। अपनी जाति को श्रेष्ठ दिखाने के लिए निम्न जाति के लोगों के साथ अन्याय करते हैं। यहाँ पर जाति भेद की गंभीर समस्या को उठाया है जो आज के समाज में प्रासंगिक है। जिस तरह द्रोणाचार्य ने धनुर्विद्या का ज्ञान ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों तक सीमित रखा उसी तरह पंडित या ब्राह्मणों ने संस्कृत का ज्ञान ब्राह्मणों तक ही सीमित रखा है जिसके परिणामस्वरूप संस्कृत भाषा समाप्त होने के कगार पर है।

नाटक में स्त्री शोषण की गंभीर समस्या का भी चित्रण किया है। महाभारत में द्रौपदी का वस्त्रहरण हुआ था और द्रोणाचार्य वहाँ होते हुए भी उन्होंने उसका विरोध नहीं किया क्योंकि वे कौरव पक्ष में थे और उनपर व्यवस्था का दबाव था। उसी प्रकार अरविंद ने राजकुमार को अनुराधा

पर बलात्कार करते देखा था लेकिन प्रेज़िडेंट के दबाव के कारण वह राजकुमार पर कोई कार्यवाही नहीं कर पाया। आधुनिक समाज में भी स्त्रियों पर अत्याचार होता है। स्त्री पर अन्याय होने के बावजूद पुरुष उसका साथ नहीं देता जिसके कारण स्त्री आत्महत्या कर लेती है। ऑफ़िस आदि स्थानों पर भी उसको बुरी नज़र से देखा जाता है।

नाटक के बीच में विमलेंदु के पात्र को दिखाया है जो इसी सत्ता और व्यवस्था का शिकार हो गया था। यहाँ पर विमलेंदु सच्चाई का साथ देता है, इसलिए उसकी हत्या की जाती है। आधुनिक समाज में जो सच्चे मार्ग पर चलता है उसे कही न कही इसका सामना करना पड़ता है। जो राजनीतिक नेता या अधिकारियों का विरोध करते है या अन्याय के ख़िलाफ़ आवाज उठाते है उन्हें मौत के घाट उतारा जाता है।

नाटक में युधिष्ठिर की तुलना चंदू से की है जो हमेशा सच्चाई का मार्ग अपनाते है। द्रोणाचार्य युधिष्ठिर का और अरविंद चंदू का भरोसा तोड़ते है। युधिष्ठिर द्रोणाचार्य से बदला लेने के लिए जिस प्रकार उससे अर्द्धसत्य कहता है उसी प्रकार चंदू भी गवाही देते वक्त अर्द्धसत्य ही कहता है। आधुनिक युग में सच का साथ देने वाले लोग विरले ही नज़र आते है। द्रोणाचार्य और अरविंद जैसे क्रूर प्रवृत्ति वाले, सत्ता और सुविधा के मोह में अपना आदर्श भूलने वाले लोगों का विनाश करने के लिए हमें युधिष्ठिर और चंदू जैसे आदर्श युवकों की आवश्यकता है। हमें समाज का कल्याण करने के लिए हमेशा सच का मार्ग अपनाना चाहिए, चाहे उसके सामने कोई भी मजबूरी आ पड़े।

"नाटक की समकालीन प्रासंगिकता स्वयं सिद्ध तो है ही साथ ही उसमें एक नवीनता भी है कि युगीन सत्य और समकालीन यथार्थ के समानांतर पूरा नाटक प्रसंगों द्वारा पुष्ट किया गया है, जिससे नाटकीय विडंबना में गहराई आई है।"[37] द्रोणाचार्य से संबंधित महाभारत के ये प्रसंग प्रोफ़ेसर अरविंद के जीवन-संदर्भों के साथ-साथ प्रदर्शित होते हुए इस सच्चाई का उद्घाटन करते हैं कि समय और समय के साथ परिस्थितियाँ बदलती हैं लेकिन परिस्थितियों और मानवीय आकांक्षाओं तथा व्यवस्था की अपेक्षाओं का सत्य कभी नहीं बदलता। कहा जा सकता है कि शंकर शेष का एक और द्रोणाचार्य नाटक आधुनिक बोध से ओतप्रोत तथा प्रासंगिक है।

3.5 माधवी

माधवी भीष्म साहनी द्वारा रचित नाटक है। इस कथा का आधार महाभारत के उद्योग पर्व के 106 वें अध्याय से 723 वें अध्याय तक की है। माधवी नहुष कुल में उत्पन्न चंद्रवंश राजा ययाति की पुत्री थी। इस नाटक में पुरुष प्रधान समाज में नारी की स्थिति को उद्घाटित किया है। माधवी की त्रासदी संवेदना के त्रिकोण में उभरती है, जिसमें पिता ययाति, तथाकथित प्रेमी गालव और उसके गर्भ को किराए पर लेने वाले पति और तपस्वी विश्वामित्र होते हैं। माधवी, पिता, प्रेमी और अस्थायी पतियों सभी के लिए आकांक्षा पूर्ति का साधन बन जाती है।

विश्वमित्र गालव के गुरु होते हैं और गुरुदक्षिणा में वह गालव से आठ सौ अश्वमेधी घोड़े माँगते हैं। अपनी गुरुदक्षिणा पूरी करने हेतु वह मदद माँगने के लिए दानवीर ययाति के पास जाता है। ययाति अपनी बेटी को दान में देता है और वह उससे कहता है कि माधवी को चक्रवर्ती पुत्रों को जन्म देने का वर तथा चिर-कौमार्य का वर प्राप्त है। पिता ययाति उसका दान सिर्फ इसलिए करता है ताकि उसे जगत में बडा दानवीर कहा जाए। वह कहता है,"जब दान दक्षिणा के प्रत्येक प्रसंग में केवल ययाति का नाम लिया जाएगा और लोग कर्ण को भूल जाएँगे।"[38] अपने स्वार्थ की पूर्ति हेतु वह बेटी को गालव के हाथ में सौप देता है। उसे माधवी की मौन चीत्कार नहीं सुनाई देती, जबकि माधवी अपने पिता को दानी के रूप में प्रतिष्ठित करती हुई भयानक परिवेश में फँस जाती है और प्रेमी के लिए गुरु दक्षिणा जुटाती हुई निराश्रय और अकेलेपन का संत्रास भोगती है।

माधवी तीन राजाओं (अयोध्या के राजा हर्यश्व, काशी के राजा दिवोदास, भोजनगर के राजा उशीनर) के रनिवास में रहकर उनको चक्रवर्ती पुत्र प्राप्त करवा देती है, जिसके बदले में

गालव को छह सौ घोड़े मिल जाते है। लेकिन बाद में पता चलता है कि आर्यवर्त में और घोड़े नहीं बचे। फिर छह सौ घोड़े जुटाने के बाद वह विश्वमित्र के भी साथ संबंध स्थापित करती है ताकि गालव के दो सौ घोड़ों की गुरुदक्षिणा माफ़ हो! इस प्रकार गालव की गुरुदक्षिणा पूरी होती है, ययाति को भी दानवीर की संज्ञा मिलती है।

अंत में माधवी का स्वयंवर रचाने की बारी आती है, लेकिन जब गालव माधवी का बूढ़ा, शिथिल शरीर देखता है तब वह असंतुष्ट हो जाता है। स्पष्ट है, गालव को माधवी से नहीं, उसके रूप से प्रेम है। वह केवल माधवी का इस्तेमाल करता है। माधवी प्रतिष्ठान करके युवती नहीं बनना चाहती थी, वह चाहती थी, जिस स्थिति में वह है उस स्थिति में गालव उसे अपना ले। गालव के मना करने के बाद वह स्वयंवर का कार्यक्रम छोड़कर आश्रम से दूर चली जाती है। पितृसत्तात्मक समाज माधवी का एक वेश्या की भांति उपभोग करते है जिसके फलस्वरूप उसे कुछ भी हासिल नहीं होता। पिता के कर्तव्य के बदले न उसे पिता का प्रेम मिलता, गालव से निःस्वार्थ प्रेम करने पर भी उसे गालव का साथ नहीं मिलता, चार पुत्रों को जन्म देने के बाद भी वह माँ नहीं बन पाई। माधवी न घर की रही, न घाट की।

आधुनिक बोध

“माधवी को दायित्व का निर्वाह करने वाली कर्तव्यपरायण, त्यागी, सेवाभाव रखने वाली नारी के रूप में दिखाया गया है, जिसकी न कोई आकांक्षा है, न अधिकार है, जो केवल समर्पण करती है, कोई उपलब्धि नहीं चाहती।”[39] पौराणिक कथा में जब उसका पिता ययाति उसे दान में दे देता है, तब वह उसका विरोध नहीं करती, बल्कि चुपचाप गालव के साथ चल देती है। जहाँ

गालव ले जाता है, बिना किसी प्रतिरोध के वहाँ चल देती है। माधवी की भाँति हम आधुनिक स्त्री की दशा भी देख सकते हैं जो अपने कर्तव्य को निभाने के लिए बहुत सारे त्याग करती है। वह पिता की आज्ञा अपना कर्तव्य समझती है और जिससे वह प्रेम करती है उसके प्रति समर्पित हो जाती है। आज समाज इतना आधुनिक हो गया है कि स्त्री अपनी मर्ज़ी के अनुसार अपना जीवनसाथी ढूँढ़ लेती है लेकिन अगर उसके पिता ने विवाह के लिए विरोध किया तो वह तुरंत पीछे हट जाती है और पिता की पसंद के लड़के से विवाह कर लेती है। वह जिस पुरुष से प्रेम करती है, उसके लिए वह कुछ भी करने के लिए तैयार हो जाती है। लेकिन पुरुष उसकी कोई क़द्र नहीं करता।

पुत्रों को जन्म देते ही माधवी को उनसे अलग किया जाता है। मातृत्व के स्वाभाविक अधिकार वात्सल्य से वंचित होने पर माधवी अंदर से टूट जाती है। वह अपने बेटे को देख भी नहीं पाती। जब माधवी वसुमना को अपना पुत्र कहती है तब गालव उससे कहता है, "तुम्हारा नहीं माधवी, महाराज हर्यश्व का पुत्र! अयोध्या का युवराज!"[40] ऐसी बातें सुनकर वह भीतर से टूट जाती है। माँ को अपने बच्चे से बहुत लगाव होता है और माँ को उसके बच्चे से अलग करना बहुत बड़ा पाप है। आधुनिक समाज में भी हम देख सकते हैं कि बेटी के जन्म होने पर उसे माँ से दूर किया जाता है। या तो उसे किसी अनाथालय में छोड़ा जाता है नहीं तो सड़क पर छोड़ दिया जाता है। नौ महीने बच्चा माँ की कोख में पलता है उसे झट से अपनी माँ से अलग करना कहाँ का न्याय है?

इस नाटक में पितृसत्तात्मक समाज का स्वार्थ नज़र आता है। माधवी गालव का प्रेम पाने के लिए अपने शरीर का त्याग करती है। गालव को गुरु दक्षिणा के गुरु भार से मुक्त कर जब माधवी उसके साथ एकांत जीवन का स्वप्न देखती है, तब गालव उसे स्वीकार नहीं करता। ऐसे में माधवी को एहसास होता है कि जिसे अपना भाग्य माना, जिसके लिए क्रूर नरक की अग्नि में जली, जिसके लिए उसने चार-चार प्रसव वेदनाएँ सहकर भी मातृत्व-सुख से वंचित रही, जिसकी प्रतिज्ञा-पूर्ति का साधन बनी, वही गालव माधवी की ढलती देह और यौवन के आकर्षण के समाप्त होने पर अस्वीकार कर रहा है। माधवी के दिल को ठेस पहुँचती है जब गालव उससे कहता है,"जो स्त्री मेरे गुरु के आश्रम में रह चुकी हो, उसे मैं अपनी पत्नी कैसे मान सकता हूँ।"[41]

पुरुष हमेशा सुंदर स्त्री से विवाह करना चाहता है लेकिन स्त्री चाहती है कि वह उसके रूप से नहीं बलकि उसकी आत्मा से प्रेम करें। आधुनिक युग में कुछ पुरुष केवल अपने स्वार्थ पूर्ति के लिए स्त्री का उपभोग करते हैं और जब स्वार्थ की पूर्ति हो जाती है तब स्त्रियों को छोड़ देते हैं।

माधवी के माध्यम से भीष्म साहनी ने नारी स्वातंत्र्य के सवाल को उठाया है। 'माधवी' नाटक में वह पुरुष के शोषण का शिकार तो होती है, लेकिन यहाँ शोषण का विरोध भी करती है। पिता के द्वारा दान में दिए जाने पर वह कोई विशेष प्रतिरोध नहीं कर पाती, लेकिन उसको इस बात का दुख अवश्य होता है कि अगर उसकी माँ होतीं, तो वह कभी भी ऐसा नहीं करतीं। जिस गालव को माधवी ने अपना सर्वस्व देकर उत्तीर्ण देखना चाहा, वही माधवी की ढलती देह और यौवन के आकर्षण के समाप्त होने पर जब उसे अस्वीकार कर देता है तब उसका स्वाभिमान जागता है और वह पुरुष समाज पर कटाक्ष करती हुई अपना रास्ता स्वयं चुनती है, गालव के रूप

में पूरे पुरुष समाज को ठेंगा दिखाते हुए। वह स्वयंवर में तपस्या करने का निर्णय लेकर गालव के आह्वान को ठुकरा देती है। माधवी के भीतर हम आज की आधुनिक नारी देख सकते हैं जो अपने हक़ के लिए आवाज़ उठाती है। पुरुष उसके रंग-रूप, शिक्षा, प्रतिभा आदि के आधार पर उसका चुनाव करता है और यदि उसमें कोई कमी नज़र आए तो उसे ठुकरा देता है। लेकिन नारी आज हर क्षेत्र में निपुण हो गई है। उसको पुरूष के समान अधिकार प्राप्त है। वह अपने अधिकारों के प्रति जागरूक है और अपने निर्णय स्वयं ले सकती है।

इस नाटक के संदर्भ में रमेश गौतम लिखते हैं- ‘‘माधवी नाटक पुरुष समाज के दुष्चक्रों में फँसी नारी की क्रूर नियति का महाभारतकालीन संस्करण है, पुनर्रचित रूप में यह आज भी नया है, इसकी संवेदना आज भी ज्वलन्त है। वर्तमान समाज- व्यवस्था में माधवी की त्रासदी आज भी ज़िंदा है और पुरुष के क्रूर शासन-चक्र में आज भी न जाने कितनी माधवियाँ अपने अस्तित्व का होम कर छटपटा रही हैं।’’[42] भीष्म साहनी के इस नाटकीय प्रयास में सामंती-व्यवस्था में नारी की अस्मिताहीन तड़प और स्वतंत्रता की मौन छिपी हुई है। मिथक और यथार्थ की संगति में भीष्म साहनी का यह नाटक मिथक नाटकों की परंपरा में अन्यतम उपलब्धि है।

संदर्भ

1. भारती डॉ॰ धर्मवीर, अंधा युग, किताब महल, नई दिल्ली, (प्र॰ सं॰ 1956), निर्देश से
2. सं॰ डॉ नगेंद्र, डॉ हरदयाल, हिंदी साहित्य का इतिहास, मयूर बुक्स,नई दिल्ली, 1973, पृ 115
3. श्रीवास्तव, डॉ॰ मंजूषा, डॉ॰ धर्मवीर भारती के नाट्य प्रयोग, मिलिंद प्रकाशन, हैदराबाद (2009), पृ 178
4. वही, पृ॰ 179
5. वही पृ. 189
6. सोनवणे, डॉ॰ चंद्रभानु, धर्मवीर भारती का साहित्य : सृजन के विविध रंग, पृ 67
7. सं॰ पुष्पा भारती, धर्मवीर भारती की साहित्य साधना, पृ 461
8. वही, पृ 462
9. केसवानी, डॉ॰ सुरेश कुमार, धर्मवीर भारती का रचना संसार, विद्या प्रकाशन, कानपुर, (2012) पृ 328
10. श्रीवास्तव, डॉ॰ मंजूषा, डॉ॰ धर्मवीर भारती के नाट्य प्रयोग, मिलिंद प्रकाशन, हैदराबाद (2009), पृ॰ 148
11. वही, पृ॰ 150
12. सोनवणे, डॉ॰ चंद्रभानु, धर्मवीर भारती का साहित्य : सृजन के विविध रंग पृ॰ 98
13. श्रीवास्तव, डॉ॰ मंजूषा, डॉ॰ धर्मवीर भारती के नाट्य प्रयोग, मिलिंद प्रकाशन, हैदराबाद (2009), पृ 192
14. वही, पृ 195
15. सं॰ डॉ॰ नरेंद्र मोहन, समकालीन हिंदी नाटक और रंगमंच, डॉ॰ जयदेव तनेजा का लेख, वाणी प्रकाशन, दिल्ली (2009), पृ 193
16. डॉ॰ किशोर, रचनाकार दुष्यंत कुमार, विनय प्रकाशन, कानपुर, (2007), पृ॰ 218

17. वही, पृ॰ 228
18. गौतम रमेश, हिंदी नाटक : मिथक और यथार्थ, अभिरुचि प्रकाशन, दिल्ली, (1997), पृ॰ 591
19. शर्मा उर्वशी, नव्य प्रबंध काव्य में आधुनिक बोध, बोहरा प्रकाशन, जयपुर, पृ॰ 285
20. डॉ॰ किशोर, रचनाकार दुष्यंत कुमार, विनय प्रकाशन, कानपुर, (2007), पृ॰ 228
21. वही, पृ 229
22. कुमार दुष्यंत, एक कंठ विषपायी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, (1963), पृ॰ 13
23. शर्मा उर्वशी, नव्य प्रबंध काव्य में आधुनिक बोध, बोहरा प्रकाशन, जयपुर, पृ॰ 286
24. रॉय मंजू, मोहन राकेश और उनके नाटकों के पात्र, अक्षर शिल्पी, दिल्ली, (2008) पृ 49
25. राकेश मोहन, लहरों के राजहंस, राजकमल प्रकाशन प्रा॰ लि॰, नई दिल्ली, (2017) पृ 15
26. रस्तोगी गिरीश, मोहन राकेश और उनके नाटक, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद (2002) पृ 62
27. रॉय मंजू, मोहन राकेश और उनके नाटकों के पात्र, अक्षर शिल्पी, दिल्ली, (2008) पृ 50
28. तिवारी कृष्णानंद, नाटककार मोहन राकेश, प्रिय साहित्य सदन, दिल्ली, (2012) पृ॰159
29. वही, पृ॰ 155
30. राकेश मोहन, लहरों के राजहंस, राजकमल प्रकाशन प्रा॰ लि॰, नई दिल्ली, (2017) पृ 60
31. प्रसाद डॉ॰ शारदा, मोहन राकेश के नाटक : विषय और विधान, पंकज बुक्स, दिल्ली (2008) पृ॰ 61
32. पटेल, डॉ॰ कपिला, डॉ॰ शंकर शेष के प्रमुख नाटकों में व्यक्त सामाजिक चेतना, शांति प्रकाशन, पृ 66
33. शेष शंकर, एक और द्रोणाचार्य, पराग प्रकाशन, दिल्ली, (1983) पृ॰ 86
34. वही, पृ॰ 108
35. गौतम रमेश, हिंदी नाटक : मिथक और यथार्थ, अभिरुचि प्रकाशन, दिल्ली, (1997), पृ॰575

36. वही, पृ॰579
37. वर्मा, डॉ॰ दिनेश चंद्र, समकालीन हिंदी नाटक एवं नाटककार, चिंतन प्रकाशन, कानपुर, (2003), पृ॰ 248
38. साहनी भीष्म, माधवी, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, (2018), पृ॰22
39. बाचुळकर, डॉ॰ अशोक, नाटककार भीष्म साहनी, श्रुति पब्लिकेशन्स, जयपुर (2005)
40. साहनी भीष्म, माधवी, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, (2018), पृ॰57
41. वही, पृ॰115
42. गौतम रमेश, हिंदी नाटक : मिथक और यथार्थ, अभिरुचि प्रकाशन, दिल्ली, (1997), पृ॰573

चतुर्थ अध्याय

मिथक नाटकों की भाषा-शैली एवं संवाद

नाटक की भाषा शैली एवं संवाद

1.अंधायुग

भाषा-शैली

अंधायुग स्थापना और समापन के अतिरिक्त एक अंतराल और पाँच अंकों में विभाजित रचना है। काव्य-नाटक अथवा रेडियो-नाटक में जैसी चित्रात्मक भाषा और ध्वनि-प्रभाव से युक्त शब्दावली की अपेक्षा होती है, 'अंधा युग' में वैसी ही शब्दावली के प्रयोग का प्रयास है।

अंधायुग में अंक परिवर्तन अथवा दृश्यान्तर के लिए कथा गायन की पद्धति को भारती ने लोक नाट्य से ही ग्रहीत किया। हर अंक के प्रारंभ में कथागायन की योजना की गई है। डॉ. जयदेव तनेजा लिखते हैं, "पारसी, लोक और शास्त्रीय रंग परम्परा के अद्भुत संयोग से रचनाकार ने अपने इस नाटक के रूप को प्राप्त किया है जो वक्ता-श्रोता शैली में होने के कारण हमारी महाकाव्यीय परम्परा के भी निकट प्रतीत होता है।"[1] भास, कालिदास जैसे कवियों के नाटक काव्यात्मक शैली में ही लिखे जाते थे। महाकाव्य में शुरू से अंत तक एक निरंतर कथा चलती है। इसी का आधार लेकर भारती जी ने आधुनिक युग में गीति नाट्य बनाया, जिसका हिंदी साहित्य में उच्च स्थान है।

'अंधा युग' की भाषा आम बोलचाल की भाषा है। "इसकी मूल्यबोधपरक शब्दावली तत्सम है, पर भाषा का सामान्य ढाँचा खास तौर पर क्रिया रूप तद्भव है।"[2] पाठकों को द्वापर काल की पृष्ठभूमि में ले जाकर महाभारत का वातावरण सजीव करने के लिए संस्कृत के शब्दों

का प्रयोग है और भाषा को सरल रूप देने के लिए इसमें तद्भव, देशज, और विदेशी शब्दों के प्रयोग भी देखे जा सकते हैं।

तत्सम शब्द जैसे संतोष, नैतिक, भविष्य, निरुद्देश्य, अनुभव, ब्राह्मण आदि शब्द आए है। कई स्थानों पर महाभारत के श्लोकों को ही शब्दशः उतार दिया गया है। उदाहरण के लिए -

नारायणाम् नमस्कृत्य नरम् चैव नरोत्तमम् ।

देवीम् सरस्वतीम् व्यासम् ततो जयमुदीयरेत्।[3]

ये श्लोक 'अंधा युग' की स्थापना के अंतर्गत लिखा है। "भारती जी द्वारा प्रयुक्त तत्सम शब्दावली उनकी कविता में एक ओर जहाँ महाभारत कालीन सांस्कृतिक चेतना को प्रस्तुत करने में सहायक सिद्ध हुए हैं, वहीं दूसरी ओर समसामयिक वातावरण के निर्माण में भी योग देते हैं।"[4]

पाठक को नाटक के साथ जोड़ने के लिए भारती जी ने सामान्य जन-जीवन से तद्भव और देशज शब्दों का चयन किया है। कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं- सपने, बरस, पत्थर, गलियारा, अँधियारा, दहाड़ता, निगलता, सूरज, बंजर, पत्ते, मोरपंख, भिखमंगे, लंगड़े, लूले, कोढ़ी आदि। ये सभी जन-सामान्य में चलने वाले दैनिक जीवन के शब्द हैं जो भारती जी की काव्य-भाषा को सहज-सामान्य रूप देने में सहायता करते हैं। उर्दू-फ़ारसी के शब्द नाटक में बहुत कम हैं, क्योंकि जिस पुरावृत्त को इसमें आधार बनाया गया है, वह पुरावृत्त भाषाओं के संक्रमण से पहले का है। चूँकि उन्हें भाषा को अधिक क्लिष्ट नहीं बनाना था, उन्होंने उर्दू-फ़ारसी के कुछ शब्द इसमें जोड़ दिए है। उदाहरण- सिर्फ़, शायद, ख़ामोशी, नफ़रत, सबर, दर्द, बावजूद, बेहद, आसमान, जख्म, मुर्दा, कफ़, ज़हरीले, पंजों, बिलकुल, निपट, बारीक, आदि।

भारती जी ने 'अंधा युग' में मुहावरों का सार्थक और प्रभावशाली प्रयोग किया है। उदाहरण- दिन काटना, धूरी से उतरना, खंड-खंड कर डालना, मृत्यु के द्वार खोलना, ताने कसना, नाटक रचना, पछाड़ खाना, भय खाना, जीवन का दाँव लगा देना आदि। मुहावरों के साथ उन्होंने सूक्तियों का भी प्रयोग किया है। उदाहरण-

मर्यादा मत तोड़ो, तोड़ी हुई मर्यादा
कुचले हुए अजगर-सी गुंजलिका में कौरव वंश को लपेटकर
सूखी लकड़ी-सा तोड़ डालेगी। [5]

इसमें बिंबों एवं प्रतीकों का भी प्रयोग हुआ है।

इन रत्न-जटित फर्शों पर कौरव वधुएँ
मंथर-मंथर गति से सुरभित पवन तरंगों-सी चलती थीं। आज वे विधवा हैं। [6]

यहाँ 'सुरभित पवन तरंगों-सी' कौरव वधुओं की विलासपूर्ण अवस्था का सूचक है। इसके साथ 'विधवा' शब्द के द्वारा विरोध का चमत्कार पैदा किया गया है। इससे कौरव वधुओं की दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति की सूचना मिलती है।

इन विवेचित विशेषताओं के कारण अंधा युग' की भाषा बोल-चाल के निकट होने पर भी अलंकृत, परिमार्जित, कल्पना से समृद्ध तथा शक्तिपूर्ण है। अंधा युग' की महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों में से उसकी भाषा भी एक है, जिसमें बिम्बों की बहुलता और भावों की तीव्रता के साथ-साथ बोल-चाल की सहजता और स्वाभाविक प्रभाव है।

संवाद

अंधा युग एक गीतिनाट्य है इसलिए इसके सभी संवाद काव्यात्मक रूप में आए है। जब इनको उधृत किया जाता है तब ऐसा लगता है मानो कोई कविता की पंक्तियाँ हो। उदाहरण :

प्रहरी १ : थके हुए हैं हम,

पर घूम-घूम पहरा देते हैं इस सुने गलियारे में

प्रहरी २ : सूने गलियारे में जिसके इन रत्न-जटित फर्शों पर कौरव-वधुएँ मंथर-मंथर गति से सुरभित पवन-तरंगों-सी चलती थीं आज वे विधवा हैं।[7]

इस गीतिनाट्य में दीर्घ संवादों का प्रयोग किया है। उदाहरण : अश्वत्थामा का स्वगत कथन तीन पृष्ठों का लंबा संवाद है।

अश्वत्थामा : यह मेरा धनुष है, धनुष अश्वत्थामा का.......धनुष मरोड़ा है, गर्दन मरोडूँगा, छिप जाऊँ, इस झाड़ी के पीछे।[8]

उसी प्रकार नाटक में लघु संवाद भी आए है। कुछ संवाद तो केवल एक शब्द के है। उदाहरण :

प्रहरी १ : मर्यादा!

प्रहरी २ : अनास्था

प्रहरी १ : पुत्रशोक

प्रहरी २ : भविष्यत्

प्रहरी १ : ये सब राजाओं के जीवन की शोभा है। [9]

नाटक में उत्सुकता बढाने के लिए अधूरे संवादों का प्रयोग किया है। विदुर और संजय के एक संवाद का उदाहरण :

विदुर : संजय तुमको दीख नहीं पड़ता क्या वन, या दुर्योधन, या.....

संजय : नहीं विदुर केवल दीवारें! दीवारें! दीवारें![10]

संवादों को प्रभावी बनाने के लिए तथा उनपर प्रेक्षकों का ध्यान आकृष्ट करने के लिए संवादों को दोहराया जाता है। उदाहण : गांधारी कृष्ण को शाप देती है तब उसके संवादों में शब्दों को दोहराया गया है-

गांधारी : तो, वह पड़ा है कंकाल मेरे पुत्र का,

किया है यह सब कुछ कृष्ण तुमने किया है यह

सुनो! आज तुम भी सुनो,

मैं तपस्विनी गांधारी अपने सारे जीवन के पुण्यों का,

अपने सारे पिछले जन्मों के पुण्यों का बल लेकर कहती हूँ, कृष्ण सुनो![11]

युद्ध जैसी घटनाएँ मंच पर दिखाना संभव नहीं है। इसलिए उन घटनाओं का उल्लेख संवादों के माध्यम से किया जाता है। उदाहरण : प्रहरी तथा विदुर के संवादों से पता चलता है कि दुर्योधन पराजित हो गए-

प्रहरी १ : संजय क्या समाचार लाए हैं?

विदुर : क्या?

प्रहरी १ : द्वंद्वयुद्ध में... राजा दुर्योधन... पराजित हुए। [12]

उसी प्रकार ऐसी घटनाओं को भी संवाद के माध्यम से बताया जा सकता है, जो भूतकाल में घटित हो गई हो। उदाहरण : अश्वत्थामा के संवाद में पांडव द्वारा की गई अपने पिता द्रोणाचार्य की हत्या की पूर्वघटना का संकेत मिलता है।

अश्वत्थामा : युधिष्ठिर की वाणी में पाकर निहत्था उन्हें

पापी धृष्टद्युम्न ने

अस्त्रों से खंड-खंड कर डाला

भूल नहीं पाता हूँ मेरे पिता थे अपराजेय

अर्ध्यसत्य से ही युधिष्ठिर ने उनका वध कर डाला। [13]

कभी-कभी नाटक में पात्र प्रत्यक्ष रूप से नहीं रहते और तब अन्य पात्रों के संवादों से उनके अस्तित्व का पता चलाता है। उदाहरण नाटक में दुर्योधन के कोई संवाद नहीं आए है फिर भी बाक़ी पात्रों के माध्यम से उसका उल्लेख किया गया है।

कृतवर्मा : करना बहुत कुछ है

जीवित अभी भी है दुर्योधन

चल कर सब खोजे उन्हें।

कृपाचार्य : संजय तुम्हें ज्ञात है कहाँ है वे? [14]

इस प्रकार के संवाद नाटक को आगे बढाने के लिए सहायक सिद्ध होते है। "डॉ. गिरीश रस्तोगी इसकी भाषा-शैली और संवाद के संदर्भ में लिखते है- संपूर्ण रूप में अंधायुग हिन्दी का पहला सफल काव्य नाटक है। बिम्बयोजना, प्रतीकात्मकता, नाटकीयता, अभिनयात्मकता

कथावस्तु में संगठन, पात्रों की गहन भावाभिव्यक्ति, छंद विधान, संवाद योजना, कार्यव्यापार की तीव्रता, नाटकीय स्थिति के चुनाव और कथा गायन एवं प्रहरियों की नवीन प्रभाव पूर्ण योजना एवं काव्यत्व की दृष्टि से यह कृति हिन्दी काव्य नाटक का नया विकास चरण है।"[15] नाटक में बिंब, प्रतीक, छंद विधान, संवाद योजना आदि के अनोखे प्रयोग से नाटक में नवीनता आती है और नाटक उत्कृष्ठ बनता है। भारती जी ने गीति नाट्य शैली में महाभारत की मिथकीय घटना का सहारा लेकर एक अनूठा प्रयोग है। यह कहना गलत नहीं होगा कि अंधायुग हिन्दी रंगमंच की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

एक कंठ विषपायी

एक कंठ विषपायी की भाषा साहित्यिक हिंदी है। नाटक शिव के पौराणिक आख्यान से संबद्ध है। अतः इसमें व्यंजनापूर्ण और संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग किया है। नाटक में संस्कृत शब्द जैसे- प्रयोजन, यश, हृदय, रुधिर, आत्म-भर्त्सना, मर्यादा, स्वप्न, प्रथम आदि आए है। तद्भव और देशज शब्द कही-कही आए है, जैसे-साँस, पहले, डर, पगडंडी, खेत, बहुत, हिलते-डुलते, आदमी आदि। यह नाटक प्राचीन काल का है तथा इसे उस देशकाल वातावरण के साथ सुमेलित करने के लिए संस्कृत शब्दों का ही अधिक प्रयोग किया है। लेकिन इसे आधुनिक परिप्रेक्ष्य में ढालने के लिए इसमें सरल हिंदी का प्रयोग हुआ है। इसमें उर्दू-फ़ारसी के शब्दों का प्रयोग बहुत कम मात्रा में हुआ है। उर्दू के शब्द जैसे- फ़ैसले, ख़त्म, फ़ौरन, गर्दन, शायद आदि नाटक में आए है।

नाटककार ने प्रतीक, बिंब एवं नए उपमानों का स्वीकार भी किया है। नाटक की भाषा सीधी सरल, प्रवाहपूर्ण है और यथार्थ परक सहज ग्राह्य भाषा नाटककार की विशेषता है। उनकी भाषा में तीखेपन का स्वर सहज उपलब्ध है। "मूर्त-अमूर्त भावों के चित्रांकन में इसका साक्षात्कार होता है। कवि की भाषा में ओजस्विता है। जिसमें चिंरतन सत्य की अभिव्यक्ति हुई है।"[16]

कवि की भाषा रस, प्रतीक, बिंब से आपुरित है। इसमें शब्द योजना, व्यंजना शक्ति और प्रतीकात्मकता के गुण भी विद्यमान हैं तथा उनकी भाषा में गद्यात्मकता भी नज़र आती है। केवल काव्यात्मक भाषा काव्य नाटक के लिए योग्य नहीं हो सकती। काव्य के साथ नाटक होने के कारण कृति में गद्यरूप भी नज़र आता है। काव्य की अपेक्षा दुष्यंतकुमार को नाट्य अधिक प्रिय

है। इस संबंध में डॉ. उमाकांत गुप्त कहते है,"यह शायद नाट्य काव्य शैली का आग्रह है। किन्तु इतने पर भी समीक्ष्य प्रबंध काव्य की भाषा गद्य के रूखेपन एवं कृत्रिमता से बची हुई है।"[17] नाटक गद्यात्मक शैली में लिखा जाता है लेकिन यह गीतिनाट्य होने के कारण पूरा नाटक काव्यात्मक शैली में लिखा गया है। इसमें गद्यात्मकता नहीं है और इसमें बनावटीपन भी नहीं है।

भाव प्रधानता के साथ उनकी भाषा गांभीर्य एवं अलंकारों से युक्त है। इसमें नाटकीय शैली, प्रश्न शैली, वर्णनात्मक शैली, चित्रात्मक शैली, प्रतीकात्मक शैली, मनोवैज्ञानिक शैली तथा व्यंग्यपूर्ण शैली का प्रयोग हुआ है।

संवाद

'एक कंठ विषपायी' एक गीतिनाट्य है। इसमें सारे संवाद काव्यात्मक शैली में रचे है। इन संवादों को इस प्रकार रचा है कि उन्हें गाया भी जा सकता है। जब शंकर त्रिशूल की टेक लगाकर एक टाँग पर खड़े होकर डमरू बजाने लगते है तब उनके द्वारा यह संवाद उधृत होता है-

शंकर : डमर-डमर बजने दो डमरू जब तक शक्ति विकास न पाए
जब तक मेरी मृतक प्रिया के शव में वापस साँस न आए। [18]

नाटक में कई जगहों पर दीर्घ संवाद आए हैं। इंद्र का लंबा संवाद आया है जब वे वरुण और ब्रह्मा से बात करते हैं।

इंद्र : प्रभु, मैंने चाहा था- महादेव शंकर के....यज्ञ किया खंडित कर रक्तपात, निर्जन कर दिया नगर। [19]

उसी प्रकार नाटक में लघु संवाद आए है। उदा : ब्रह्मा और इंद्र के संवाद-

ब्रह्मा : लेकिन किसके संरक्षक हो?

इंद्र : देवलोक का।

ब्रह्मा : देवलोक के नहीं सत्य के संरक्षक को जय मिलती है। [20]

सती के यज्ञ में कूदकर आत्मदाह करने की घटना मंच पर दिखाना संभव नहीं है। इसलिए द्वारपाल और विरिणी के संवादों से इस घटना का उल्लेख किया है-

विरिणी : शीघ्र कहो क्या हुआ सती को... मेरी लाडली सती को क्या हुआ बोलो, चुप क्यों हो?

द्वारपाल : सब कुछ क्रुद्ध हो गया अभी पल भर में महादेवी! अब तक भी उस पर विश्वास नहीं होता। जैसे ही महाराज क्रोधातुर महादेव शंकर पर रोष व्यक्त करते यज्ञ मंडप में घुसे, तैसे ही अनायास, भगवती सती के पास विद्युत सी कौंध गई। भस्म हो गया उसमें सुंदर सर्वांग चंद्र-गौर-वर्ण और दूसरे ही पल भगवती सती का अधझुलसा शव सामने पड़ा था। [21]

लहरों के राजहंस

भाषा-शैली

लहरों के राजहंस की भाषा सहज, सरल, प्रवाहमय और अनौपचारिक है। पात्र के व्यक्तित्व के अनुसार ही संवादों की रचना हुई है। "नाटक में ऐतिहासिक घटना का चित्रण हुआ है इसलिए नाटक की भाषा संस्कृत शब्दावली से युक्त है। 'प्रत्यूष, उत्तरीय, विशेषक, आखेट, भ्रांति, कक्ष, अग्निकाष्ट, अक्षत आदि शब्द तात्कालीन युग का विशेष वातावरण सजीव करने में सक्षम है।"[22] भाषा में अंग्रेजी तथा उर्दू-फ़ारसी के शब्द न के बराबर है। डॉ. शारदा प्रसाद ने लिखा है, "मानसिक तनावों को अभिव्यक्त करने के लिए लंबे स्वगत कथनों की योजना की गई है, वहाँ थोड़ी शिथिलता आ गई है किंतु इसे दोष नहीं माना जाएगा।"[23] इसकी भाषा में नंद के द्वंद्व और तनाव को प्रस्तुत करने की, बोलने के ढंग, लय और शब्द विन्यास से एकदम सच्ची लगने का अद्भुत गुण विद्यमान है। इस नाटक में प्रौढ़ गंभीरता और तीव्र सौंदर्यबोध है। इसकी भाषा में धीरता, गंभीरता और प्रशांतता है।

संवादों की रचना और पात्रों की भाषा ही दर्शकों को पात्र के निकट लाती है। नाटक में शब्दों से पूरा सजीव चित्रण हुआ है। मृग के माध्यम से नंद के मन की थकान का अंदाज लगाया जा सकता है। सुंदरी के मन में यशोधरा के प्रति जो ईर्ष्या का भाव है वह उसकी कड़वी भाषा से ही पता चलता है। नंद जब सुंदरी का प्रसाधन करता है तब उनकी भाषा में मधुरता नज़र आती है। श्यामांग के ज्वर प्रलाप के समय आए संवाद उसके मनस्थिति को दर्शाते हैं।

संवाद

संवाद छोटे-छोटे, संवेदनशील, सुगठित, प्रयोजनशील, काव्य श्री से समृद्ध और चारित्र्य-उद्घाटक है। संवादों में मानवीय संवेदनशीलता का संस्पर्श और बौद्ध कालीन दर्शन के साथ ही आधुनिक जीवन दर्शन का समावेश भी हुआ है।

नाटक के तीसरे अंक में नंद के संवाद पर्याप्त लंबे हैं, लेकिन भाषण प्रतीत नहीं होते। पात्रों के मनस्थिति का चित्रण करने के लिए स्वगत कथनों का प्रयोग किया है। उदाहरण नाटक के अंत में नंद का लंबा स्वगत कथन -

नंद : "है, है, है। उससे थोड़ा, थोड़ा, थोड़ा अधिक है।..... क्योंकि मैं यह भी हूँ और वह भी... इनमें से कोई एक नहीं, जैसा कि तुम सब अलग-अलग से विश्वास करना चाहते हो कि मैं हूँ...![24]

उसी प्रकार नाटक में लघु संवाद भी देखे जा सकते है। नाटक के अंत में नंद और अलका का लघु संवाद–

नंद : उसे जगाओ नहीं, सोई रहने दो।

अलका : आ-आ-आप!

नंद : हाँ, मैं। तुम जाओ। उसे सोई रहने दो। [25]

संवादों को प्रभावी बनाने के लिए नाटककार ने शब्दों को दोहराया है। उदाहरण -

सुंदरी : "तुम...! कितने-कितने बिंदु खोजे हैं आज तक तुमने?... फिर भी क्यों वही के वही बने रहते हो तुम? वही... वही... वही! [26]

नाटक में कुछ ऐसे दृश्य होते है जिन्हें प्रत्यक्ष रूप से मंच पर प्रस्तुत नहीं किया जा सकता इसलिए संवादों के माध्यम से उन घटनाओं का संकेत दिया गया है। नंद का जंगल में जाकर व्याघ्र से युद्ध करने की घटना का उल्लेख श्वेतांग और अलका के संवादों में आया है-

श्वेतांग : उसके बाद का ही तो ठीक पता नहीं चला। कुछ लोगों का कहना है कि उसके बाद उन्हें घने जंगल की ओर जाते देखा गया था।

अलका : घने जंगल की ओर? परंतु अपने शस्त्रास्त्र उनके पास नहीं थे। फिर वे कैसे? [27]

इसी प्रकार अलका और सुंदरी के संवादों के सहारे नाटककार ने यशोधरा के बौद्ध धर्म में प्रवेश करने और गृह त्याग करने की भावी घटना की ओर भी संकेत किया है। पूरा नाटक बुद्ध पर केंद्रित है लेकिन बुध्द और यशोधरा के कोई संवाद नहीं आए है लेकिन अन्य पात्रों के संवादों के माध्यम से हमें उनके बारे में बहुत कुछ पता चलता है।

नंद : मैं विशेष रूप से नहीं गया था।... गया था देवी यशोधरा से मिलने

सुंदरी : देवी यशोधरा से मिलने? क्यों?[28]

पात्रों के चरित्रों को भी संवादों के माध्यम से ही गढा है। सुंदरी के सौंदर्य की व्याख्या नंद के संवादों से की गई है-

नंद : "यक्षिणी हो या नहीं, मैं नहीं कह सकता, परंतु मानवी तुम नहीं हो। ऐसा रूप मानवी का नहीं होता।"[29]

सुंदरी के मन में यशोधरा के प्रति जो ईर्ष्या का भाव उसके संवादों में नज़र आता है।

सुंदरी : नारी का आकर्षण पुरुष को पुरुष बनाता है, तो उसका अपकर्षण पुरुष को गौतम बुद्ध बना देता है। [30]

कुछ संवाद नेपथ्य से बोले जाते है। पात्रों को प्रत्यक्ष रूप से मंच पर आने की आवश्यकता नहीं पड़ती। बुद्ध के आगमन की सूचना देने के लिए नेपथ्य से भिक्षु-भिक्षुणियों का समवेत स्वर भी संवादों में प्रस्तुत किया है-

नेपथ्य : (समवेत) "धम्मं शरणं गच्छामि

संघं शरणं गच्छामि

बुद्धं शरणं गच्छामि"[31]

लहरों के राजहंस में अनेक बिंबों एवं प्रतीकों का प्रयोग किया है। दो दीपाधार, दर्पण, लहरों पर तैरते राजहंस, मृग आदि का प्रतीक रूप में उपयोग किया है। नाटक की भाषा और उसके संवाद पूर्णतः पात्रानुकूल है। संवादों में मानवीय संवेदनशीलता का संस्पर्श और बौद्ध कालीन दर्शन के साथ ही आधुनिक जीवन दर्शन का समावेश हुआ है।

एक और द्रोणाचार्य

भाषा शैली

एक और द्रोणाचार्य नाटक की भाषा सरल, सहज और पात्रानुकूल है। भाषा में व्यंग्य की तीव्रता है और आवश्यकतानुसार अंग्रेजी तथा संस्कृत के शब्द आहे है। नाटक में दो कथाएँ समानांतर चलती है। आधुनिक युगीन कथा की भाषा उसी के समान आधुनिक है और महाभारतकालीन भाषा संस्कृतनिष्ठ है।

इसमें संस्कृत शब्द जैसे परिणाम, आचार्य, प्रतिभा, प्रायश्चित, आत्मा, शरीर आदि आए है। तद्भव शब्द जैसे - कपड़ा, अनाज, कुत्ता, पिताजी, नौकरी, खून आदि। उर्दू-फ़ारसी के शब्द जैसे इस्तीफ़ा, बेहूदा, ख़िलाफ़, नामर्द, बेईमान, फैसला आदि। अंगेजी शब्द जैसे : प्रोफेसर, कॉलेज, कार्ड्स, मिस्टर, प्रेसिडेंट, अंडरस्टैंड, ट्रेजडी आदि। मुहावरे जैसे : मज़ाक उड़ाना, ईट से ईट बजाना, खटाई में पड़ना, पचड़े में पड़ना, विश्वास टूटना, अपमान का घूँट पीओ आदि। इस नाटक में प्रतीक और बिंबो का इस्तेमाल नहीं हुआ है।

लेखक की शब्दयोजना, वाक्यांशों का प्रयोग, वाक्यों की बनावट, उसकी ध्वनि योजना और नाटककार की विशिष्ट शैली नाटक को और सुंदर बनाती है। कई जगहों पर व्यंग्यात्मकता और व्यंजकता उभर आई है परंतु भाषिक स्तर का यहॉं ज़्यादा ध्यान नहीं लगता। इसके बारे में जयदेव तनेजा भी लिखते है - "पौराणिक और समकालीन दृश्यों में यदि भाषा का अंतर भी लिखा है-संभवतः रचना अधिक रोचक और कलात्मक ही हो सकती थी।"[32]

संवाद

नाटक के संवाद छोटे-छोटे और प्रवाहमान है। लेकिन कुछ स्थानों पर दीर्घ संवादों को भी देखा जा सकता है। उदाहरण : नाटक के उत्तरार्ध में लीला का स्वगत कथन –

लीला : हलो... कौन मिसेज शुक्ला? मैं लीला बोल रही हूँ...... नहीं-नहीं..अच्छा-अच्छा नमस्कार। [33]

नाटक में अधिकतर लघु संवाद आए है। उदा : विमलेंदु और अरविंद का संवाद-

विमलेंदु : अब मैं बिना चेहरे का आदमी हूँ!

अरविंद : क्या तुम विमलेंदु...

विमलेंदु : हाँ, विमलेंदु-तुम्हारा मित्र!

अरविंद : लेकिन तुम्हारा चेहरा कहाँ गया? [34]

कई जगहों पर प्रश्नात्मक संवाद आए है। उदाहरण अरविंद का लीला से संवाद-

अरविंद : अब किस-किस से डरूँ, लीला? कॉलेज दुकान की तरह चलाने वाले उस प्रेसिडेंट से? अँगूठा-छाप कमेटी मेम्बरों से? चुगली खाने वाले अपने सहयोगियों से? उस लिजलिजे बेहूदे प्रिंसिपल से? विद्यार्थियों से? क्या पूरी उम्र डरते ही रहना होगा?[35]

नाटक की उत्सुकता बनाए रखने के लिए अधूरे संवादों का प्रयोग किया है। उदाहरण अनुराधा और अरविंद का संवाद-

अनुराधा : नहीं आ पाया। एकाएक उसे शहर से बाहर जाना पड़ा। अगर वह आ जाता तो...

अरविंद : तो क्या कर लेता?[36]

द्रौपदी के वस्त्रहरण की घटना को मंच पर दिखाना संभव नहीं है इसलिए उस घटना का उल्लेख कृपी और अश्वत्थामा के संवादों के माध्यम से किया है-

अश्वत्थामा : तुम उत्तर क्यों नहीं देती? रजस्वला एकवस्त्रा द्रौपदी को दरबार में नंगा किया जा रहा था। फिर भी मैं चुप बैठा रहा। आकाश के टुकड़े कर देने वाली मर्मभेदी आवाज से वह पुरुष जाति को पुकार रही थी। इसके बाद भी चुप रहा। बताओ, ऐसा क्यों हुआ?

कृपी : कहती हूँ न, अपने पिता से पूछ। [37]

कुछ ऐसे पात्र होते है जिनके नाटक में कोई संवाद नहीं होते, लेकिन उनकी भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। उदाहरण : पूरे नाटक में राजकुमार का कोई भी संवाद नहीं आया है लेकिन उसी के कारण नकल और बलात्कार की दो महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटती है। उस पात्र का जिक्र अन्य पात्रों के माध्यम से किया है। उदाहरण अरविंद और चंदू का संवाद-

अरविंद : पर तुम लोगों ने यह कैसे मान लिया कि रिपोर्ट दबा दी जाएगी?

चंदू : क्योंकि राजकुमार प्रेसिडेंट का लड़का है।

अरविंद : इससे क्या होता है?

चंदू : वह प्रोफेसरों को अपने बाप का नौकर समझता है और कॉलेज को अपनी जायदाद। [38]

माधवी

भाषा शैली

माधवी नाटक की भाषा शैली सरल और प्रवाहमय है। इसमें संस्कृत शब्दों का अधिक प्रयोग हुआ है। संस्कृत शब्द जैसे : पृथ्वी, अतिथि, अतिरिक्त, जन्म, प्रयोजन, वस्त्र, ऋषि, ब्राह्मण, सुंदर, आश्रम आदि। तद्भव शब्द जैसे : स्त्री, बच्चा, लपटें, बाढ़, घोड़े, दान आदि। इसमें अंग्रेजी और उर्दू- फारसी के शब्द न के बराबर हैं।

नाटक में पात्रों के मनोगत भाव सरलता से व्यक्त हुए हैं। अनावश्यक, जटिल और संदिग्ध वाक्य नाटक में नहीं आए है। "माधवी की भाषा बिलकुल स्पष्ट और सर्वजन ग्राह्य है। बोलचाल की साधारण भाषा में सुंदर भावाभिव्यक्ति इस नाटक की खास विशेषता है।"[39] पौराणिक परिवेश के अनुकूल भाषा संस्कृतनिष्ठ है। विश्वामित्र, ययाति, गालव व अन्य राजा सभी की भाषा में स्वाभविकता, लय और गत्यात्मकता है। माधवी के संवादों में कोमलता और सरसता और जीवंतता है। नाटक में बिंब, प्रतीक और अलंकार की बनावट नहीं है। रोचक और स्वाभाविक भाषा होने के कारण नाटक में कौतूहल बना रहता है।

सूत्रधार की तरह कथावाचक का प्रयोग इसकी विशेषता है, जो पौराणिक परिवेश के अनुकूल है। इसके माध्यम से भीष्म साहनी ने कथावाचन शैली का प्रयोग किया है। यह शैली दर्शकों पर सीधे अपना प्रभाव डालती है। कथावाचक के माध्यम से कथानक का परिचय, कथा-सूत्रों को जोड़ना, प्रतिक्रिया, टिप्पणी, व्याख्या, व्यंग्य, बातचीत सब कुछ अभिव्यक्त किया गया

है। हम देख सकते हैं कि कथावाचक का सुर धीरे-धीरे व्यंग्यात्मक होता चला गया है। किंतु कहीं-कहीं कथावाचन का विस्तार रंगमंच की दृष्टि से उबाऊ सा भी हो जाता है।

<u>संवाद</u>

नाटक में हर दृश्य से पहले कथावाचक का दीर्घ संवाद आया है। यों तो वह कथा में पात्र के रूप में नहीं आया लेकिन नाटक के पूर्व की पृष्ठभूमि उसी के द्वारा बताई गई है। उदा : प्रथम अंक के प्रथम दृश्य में कथावाचक का दीर्घ संवाद-

कथावाचक : धर्मग्रंथों में मनुष्य के बहुत से गुण गिनाए गए है..... यहीं से, महाभारत में मुनिकुमार गालव की कथा आरंभ होती है।[40]

नाटक में लघु संवाद प्रचुर मात्रा में देख सकते है। उदा : तीन लोगों के संवाद-

एक : ये घोड़े किसके हैं भाई? कहाँ जा रहे हैं?

आदमी : ये ब्राह्मणों के घोड़े हैं।

दूसरा : ब्राह्मणों के घोड़े ? कौन से ब्राह्मणों के?

एक : ब्राह्मणों को घोड़ों से क्या काम ?

आदमी : एक बहुत बड़ी दुर्घटना घटी है। [41]

नाटक में कुछ प्रश्नात्मक संवाद आए है। उदा : माधवी और गालव का संवाद-

गालव : माधवी!

माधवी : क्या देख रहे हो, गालव?

गालव : तुम कितनी सुंदर हो। तुम्हें पाकर कोई भी राजा धन्य होगा।

माधवी : क्या कह रहे हो, गालव?

गालव : तुम क्या चाहती हो माधवी?[42]

नाटक में उत्सुकता बढ़ाने के लिए अधूरे संवादों का प्रयोग किया है। उदाहरण : गालव और माधवी के संवाद-

गालव : पर, माधवी...

माधवी : चिंता नहीं करो, गालव। क्या तुम भूल गए? मुझे चिर-कौमार्य का वर प्राप्त है।[43]

संवादों को प्रभावी बनाने के लिए उन्हें दोहराया जाता है। इससे घटना के महत्त्व और गांभीर्य का अंदाजा लगाया जा सकता है। उदा : गालव के द्वारा 'माधवी' शब्द का उद्गार-

गालव : माधवी!

माधवी : तुम्हें बधाई हो, गालव। तुम्हारी गुरुदक्षिणा संपन्न हुई। तुम उत्तीर्ण हुए। अब तो मँझदार में नहीं हो ना?

गालव : माधवी!

माधवी : मुझे देखकर चौक गए हो, गालव। जैसे तुमने मुझे पहले कभी देखा ही न हो।

गालव : माधवी![44]

संदर्भ-

1. तनेजा, डॉ. जयदेव, आज के हिंदी रंगनाटक, पृ 39
2. श्रीवास्तव, डॉ. मंजूषा, डॉ. धर्मवीर भारती के नाट्य प्रयोग, मिलिंद प्रकाशन, हैदराबाद, (2009) पृ. 162
3. भारती धर्मवीर, अंधायुग, किताब महल, नई दिल्ली, (1956) पृ.1
4. श्रीवास्तव, डॉ. मंजूषा, डॉ. धर्मवीर भारती के नाट्य प्रयोग, मिलिंद प्रकाशन, हैदराबाद, (2009) पृ. 162
5. भारती, धर्मवीर, अंधायुग, किताब महल, नई दिल्ली, (1956) पृ. 9
6. वही, पृ. 4
7. वही, पृ.4
8. वही, पृ.27
9. वही, पृ. 17
10. वही. पृ. 69
11. वही, पृ. 81
12. वही, पृ. 46
13. वही, पृ. 25
14. वही, पृ. 29
15. रस्तोगी, डॉ. गिरीश, हिंदी नाटक : सिद्धांत और विवेचन, पृ 197

16. वर्मा, डॉ. दिनेश चंद्र, समकालीन हिंदी नाटक एवं नाटककार, चिंतन प्रकाशन, कानपुर, (2003), पृ. 216
17. वही, पृ. 217
18. कुमार दुष्यंत, एक कंठ विषपायी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, (1963), पृ. 90
19. वही पृ. 43
20. वही, पृ. 98
21. वही पृ. 35
22. नारायण राजू प्रो. एस. वी. एस. एस, रंगमंच के नाटककार मोहन राकेश, अमन प्रकाशन, कानपुर, (2016) पृ 79
23. प्रसाद डॉ. शारदा, मोहन राकेश के नाटक : विषय और विधान, पंकज बुक्स, दिल्ली, (2008)
24. राकेश मोहन, लहरों के राजहंस, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, (2017) पृ 130
25. वही, पृ. 115
26. वही, पृ.131
27. वही पृ. 114
28. वही, पृ 72
29. वही पृ. 93
30. वही पृ. 60
31. वही, पृ 94

32. तनेजा, डॉ. जयदेव, आज के हिंदी रंगनाटक, पृ 45

33. शेष शंकर, एक और द्रोणाचार्य, प्राग प्रकाशन, नई दिल्ली, (1983), पृ. 55

34. वही, पृ. 37

35. वही, पृ. 16

36. वही, पृ. 69

37. वही, पृ. 40

38. वही पृ. 26

39. वर्मा, डॉ. दिनेश चंद्र, समकालीन हिंदी नाटक एवं नाटककार, चिंतन प्रकाशन, कानपुर, (2003), पृ. 225

40. साहनी भीष्म, माधवी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, (2017) पृ. 12

41. वही, पृ. 80

42. वही, पृ. 27

43. वही, पृ. 43

44. वही, पृ. 110

उपसंहार

स्वातंत्र्योत्तर मिथक नाटकों में आधुनिक बोध इस विषय पर यह लघु शोध प्रबंध पूर्ण किया है। मिथक ऐसी कहानी या विचार होते है जो लोगों के बीच प्रचलित होते है, परंतु उसका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं होता। वे हमारे समाज और संस्कृति को आगे बढाने में मदद करते है और अपने इतिहास तथा धरोहर से जोड़ते है। मिथक इतिहास को समझने का द्वार है तथा उनका अस्तित्व हमारे जीवन में अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

स्वातंत्र्योत्तर युग में मिथक का सहारा लेकर अनेक नाटक लिखे जिसमें आधुनिक जीवन की त्रासदी का चित्रण मिलता है। नाटककारों ने मिथकीय कथा का संदर्भ लेकर उसे आधुनिक समस्याओं से जोड़ा और प्रासंगिक बनाया। नाटकों को सशक्त एवं सदृढ़ बनाने के लिए उनमें महाभारत की पौराणीक कथा का आश्रय लिया।

इस लघु शोध के प्रथम अध्याय में मिथकों के अर्थ एवं स्वरूप को स्पष्ट किया है। इसमें विभिन्न भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों के मत एवं दृष्टिकोण की चर्चा की है। आलोचक रमेश गौतम द्वारा चर्चित विशेषताओं का ज़िक्र किया है और धर्म, कला, विज्ञान आदि क्षेत्रों में मिथक के महत्त्व को स्पष्ट किया है।

द्वितीय अध्याय में आधुनिक बोध के अर्थ और स्वरूप को स्पष्ट किया है। आधुनिकता विभिन्न स्तरों पर विभिन्न मान्यताओं, प्रथाओं, और तकनीकी उन्नतियों को संदर्भित करती है। यह समाज, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, और सांस्कृतिक बदलावों की प्रक्रिया है जो मानव समाज को समृद्धि की दिशा में ले जाती है। इस प्रकार आधुनिकता और आधुनिकीकरण के विषय पर चर्चा की है। इसमें आधुनिक बोध के महत्त्व को स्पष्ट किया है। आधुनिक बोध का महत्त्व इसलिए है क्योंकि यह हमें वर्तमान समाज और तकनीकी उन्नति को समझने में मदद करता है। हमें समस्याओं को समझने और समाधान करने की क्षमता प्रदान करता है, और हमें अपने विचारों और कृतियों को समृद्धि और सुधारने के लिए अद्यतन रखने में मदद करता है।

तृतीय अध्याय में पाँच मिथक नाटकों का विश्लेषण किया है तथा उसमें उपस्थित आधुनिक बोध को भी स्पष्ट किया है। इसमें चयनित पाँच नाटकों का अध्ययन किया है। जिसमें अंधायुग, एक कंठ विषपायी, लहरों के राजहंस, एक और द्रोणाचार्य और माधवी का अध्ययन किया है।

धर्मवीर भारती कृत अंधा युग जो एक गीति नाट्य है। महाभारत के उत्तरार्द्ध को आधार मानकर इस नाटक की रचना हुई। अंधा युग में मानवीय मूल्यों का विघटन एवं उस विघटन के परिणामस्वरूप मनुष्यता के सम्मुख उपस्थित सांस्कृतिक संकट के आख्यान के रूप में देख सकते है। यह नाटक आधुनिक युग के अंधेपन का प्रतीक है। भारती जी ने इतिहास पर वर्तमान को कहीं भार न बनाकर इतिहास को वर्तमान के अनुकुल बनाया है। महाभारत का विनाशक युद्ध अंधा युग की ठोस पृष्टभूमि मात्र नहीं रहता, एक प्रतीक बन जाता है।

दुष्यंत कुमार द्वारा रचित एक कंठ विषपायी पौराणिक आख्यान पर होते हुए भी अपने ढंग में आधुनिक है। घटना और कथा प्रधानता के स्थान पर भावपक्ष पर ज़ोर दिया है। आधुनिक जीवन की विडंबना के यथार्थ अंकन हेतु नाटककार ने पौराणिक कथा में परिवर्तन करके प्रस्तुत किया है। यह नाटक शिवपुराण के सतीदाह प्रसंग को आधार बनाकर आधुनिक भावबोध को प्रस्तुत किया है।

मोहन राकेश द्वारा रचित लहरों के राजहंस नाटक है जिसमें सांसारिक सुख तथा आध्यात्मिक शांति का परस्पर विरोध तथा उनके बीच खड़े व्यक्ति द्वारा निर्णय लेने का अनिवार्य द्वंद्व निहित है। नाटककार ने नंद में माध्यम से मानव मन के अंतर्द्वंद्व को चित्रित करने का प्रयास किया है। नंद जो एक तरफ़ अपनी पत्नी से बेहद प्रेम करता है और उसके साथ सुखभरा जीवन जीना चाहता है, वही दूसरी तरफ़ वह अपने सौतेले भाई बुद्ध से प्रभावित है और आध्यात्मिक शांति के लिए सारी मोह माया त्यागकर दीक्षा लेना चाहते है।

शंकर शेष द्वारा रचित एक और द्रोणाचार्य नाटक शिक्षा जगत एवं शिक्षक वर्ग की त्रासद स्थितियों का चित्रण करता है। यह नाटक व्यक्ति की उस स्थिति को हमारे समक्ष रखता है जिसमें

वह अपने परिवार की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हर तरह का समझौता करता है। महाभारत में राजकीय सुविधाओं का भोग करते-करते धीरे-धीरे द्रोणाचार्य के भीतर का आदमी मर जाता है। सत्य का मार्ग जानते हुए भी वह उस पर नहीं चलते। यही हाल अरविंद का होता है जो एक प्राइवेट कॉलेज के प्रोफ़ेसर है। व्यवस्था उन्हें भष्ट्राचार करने के लिए मजबूर करती है। अरविंद सत्ता और व्यवस्था के सामने हारा हुआ आधुनिक द्रोणाचार्य है।

भीष्म साहनी द्वारा रचित माधवी नाटक भारतीय समाज व्यवस्था में किस प्रकार पुरुष वर्ग अपने स्वार्थ को संतुष्ट करने के लिए संवेदनहीन होकर नारी का शोषण करता है, उसकी कथा है। गालव अपनी गुरुदक्षिणा पूरी करने के लिए दानवीर ययाति की पुत्री माधवी का उपभोग करता है। माधवी अपनी परवाह किए बिना खुशी-खुशी गालव को उसकी गुरुदक्षिणा पूरी करने में सहायता करती है लेकिन गालव उसका सौंदर्य खो जाने पर उसे स्वीकारने से मना करता है। माधवी उससे प्रेम करती है और गालव के लिए वह अपने आप को समर्पित करती है लेकिन गालव उसे प्रताड़ित करता है। पितृसत्तात्मक समाज के द्वारा नारी शोषण का मार्मिक चित्रण इस नाटक में किया है।

चतुर्थ अध्याय इन चयनित नाटकों की भाषा-शैली और संवाद पर आधारित है। इसके अंतर्गत नाटक में तत्सम, तद्भव, उर्दू-फ़ारसी, अंग्रेजी आदि शब्द, मुहावरे, प्रतीक, बिंब आदि की चर्चा की है। नाटक में आए दीर्घ, लघु, अधूरे आदि संवादों को भी चर्चा में लाया है।

मिथक समाज और सामाजिक व्यवहार को बनाने और आकार देने का काम करते हैं। आधुनिकीकरण के दौर में लोगों ने मिथकों का मज़ाक बनाकर रखा है क्योंकि लोग केवल तथ्यों या विज्ञान पर विश्वास करते है और मिथक एक ऐसी घटना है जिसका कोई ठोस सबूत नहीं है। इस शोध का उद्देश्य आज की पीढ़ी को नाटकों के माध्यम से मिथकों से अवगत करने का है। पाठकों को मिथकीय नाटकों के माध्यम से वर्तमान स्थितियों से अवगत कराना, पाठकों को इतिहास और पुराण की जानकारी देना भी इस शोध का उद्देश्य है।

इस शोध का वर्तमान में अत्यधिक महत्त्व है और आने वाले समय में इसका महत्त्व कम नहीं होगा। मिथक नाटकों के माध्यम से वास्तविकता का चित्रण किया गया है। आज का मनुष्य इतिहास या पुराण के पात्रों से किस प्रकार भिन्न है या उसका आचरण किस प्रकार समान है यह नाटकों को पढ़ने के बाद स्पष्ट होता है।

मिथक एकसाथ पौराणिक और नवीन दोनों हैं। पौराणिक घटनाएँ उस सीमित काल से बाहर आकर आधुनिक विशाल समाज का प्रतिनिधित्व करने में सक्षम है। इसलिए मिथक द्वारा आधुनिक जीवन की नई दिशा की तलाश आधुनिक साहित्य की मूल संवेदना बन गई है। आज के युग में आदमी अपने आप को अपूर्ण महसूस कर रहा है। आज की अधूरी अर्थहीन ज़िंदगी में मिथक जीवन की अर्थवत्ता का बोध दिलाता है। मिथक के पात्र एवं घटनाएँ समाज के हर परिवेश को नए ढंग से व्याख्यायित करते हैं। संप्रेषण की इस सार्थकता में मिथक की भूमिका निर्विवाद की है।

संदर्भ-सूची

आधार ग्रंथ

1. भारती धर्मवीर, अंधा युग, किताब महल, नई दिल्ली (1956)
2. कुमार दुष्यंत, एक कंठ विषपायी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद (1963)
3. राकेश मोहन, लहरों के राजहंस, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली (2017)
4. शेष शंकर, एक और द्रोणाचार्य, पराग प्रकाशन, दिल्ली (1983)
5. साहनी भीष्म, माधवी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली (2018)

सहायक ग्रंथ

1. गौतम रमेश, हिंदी नाटक मिथक और यथार्थ, अभिरुचि प्रकाशन, (1997)
2. डॉ. नगेंद्र, मिथक और साहित्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, (1973)

बी. पटेल डॉ. सुरेश, हिंदी नाटक और मिथक, अभय प्रकाशन, कानपुर (2016)

3. सिंह डॉ.मालती, मिथक एक अनुशीलन, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद (1988)
4. शुक्ल आ. रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली (1929)
5. शर्मा, डॉ. दिनेश कुमार, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, (2006)
6. मिश्र, डॉ रामपति, भारतीय काव्यशास्त्र एवं पाश्चात्य साहित्य चिंतन, शांति प्रकाशन, (प्र सं. 2001)
7. शर्मा डॉ. कृष्णदेव, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र, अग्रवाल पब्लिकेशन, उत्तर प्रदेश (2016)
8. सिंह डॉ. शंभुनाथ, मिथक और आधुनिक कविता, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
9. सिंह डॉ. बच्चन, समकालीन साहित्य-आलोचना की चुनौती, वाणी प्रकाशन, दिल्ली (सं 2018)
10. मेघ, डॉ. रमेशकुंतल, साक्षी है सौंदर्य प्राश्निक, राजकमल प्रकाशन, (1999)

11. मिश्र, डॉ. उन्मेष, आधुनिक हिंदी काव्य संवेदना के शिखर, पीयूष प्रकाशन, दिल्ली (2012)
12. अग्रवाल विपिन कुमार, आधुनिकता के पहलू, लोकभारती प्रकाशन, (2020)
13. तिवारी अजय, आधुनिकता पर पुनर्विचार, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, (2012)
14. मेघ, डॉ. रमेश, आधुनिकता और आधुनिकीकरण, अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली (1969)
15. सिंह दिनकर, डॉ. रामधारी, आधुनिक बोध, पंजाबी पुस्तक भंडार, नई दिल्ली (1973)
16. मदान, डॉ. इंद्रनाथ, आधुनिकता और हिंदी साहित्य, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली, (1978)
17. श्रीवास्तव, डॉ. मंजूषा, डॉ. धर्मवीर भारती के नाट्य प्रयोग, मिलिंद प्रकाशन, हैदराबाद (2009)
18. सोनवणे, डॉ. चंद्रभानु, धर्मवीर भारती का साहित्य : सृजन के विविध रंग
19. केसवानी, डॉ. सुरेश कुमार, धर्मवीर भारती का रचना संसार, विद्या प्रकाशन, कानपुर, (2012)
20. डॉ. किशोर, रचनाकार दुष्यंत कुमार, विनय प्रकाशन, कानपुर, (2007)
21. शर्मा उर्वशी, नव्य प्रबंध काव्य में आधुनिक बोध, बोहरा प्रकाशन, जयपुर
22. रॉय मंजू, मोहन राकेश और उनके नाटकों के पात्र, अक्षर शिल्पी, दिल्ली, (2008)
23. रस्तोगी गिरीश, मोहन राकेश और उनके नाटक, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद (2002)
24. तिवारी कृष्णानंद, नाटककार मोहन राकेश, प्रिय साहित्य सदन, दिल्ली, (2012)
25. प्रसाद डॉ. शारदा, मोहन राकेश के नाटक : विषय और विधान, पंकज बुक्स, दिल्ली (2008)
26. पटेल, डॉ. कपिला, डॉ. शंकर शेष के प्रमुख नाटकों में व्यक्त सामाजिक चेतना, शांति प्रकाशन

27. वर्मा, डॉ. दिनेश चंद्र, समकालीन हिंदी नाटक एवं नाटककार, चिंतन प्रकाशन, कानपुर, (2003)
28. बाचुळकर, डॉ. अशोक, नाटककार भीष्म साहनी, श्रुति पब्लिकेशन्स, जयपुर (2005)
29. तनेजा, डॉ. जयदेव, आज के हिंदी रंगनाटक, तक्षिला प्रकाशन, (2011)
30. रस्तोगी, डॉ. गिरीश, हिंदी नाटक : सिद्धांत और विवेचन
31. नारायण राजू प्रो. एस. वी. एस. एस, रंगमंच के नाटककार मोहन राकेश, अमन प्रकाशन, कानपुर, (2016)

संपादकीय पुस्तकें

1. डॉ. नरेंद्र मोहन, समकालीन हिंदी नाटक और रंगमंच, डॉ. जयदेव तनेजा का लेख, वाणी प्रकाशन, दिल्ली (2009)
2. प्रधान संपादक : प्रो. कल्याणमल लोढ़ा, सहायक संपादक : डॉ. शंभुनाथ, मिथक और भाषा, कलकत्ता विश्वविद्यालय, दुर्गेश प्रिंटर्स (1981)
3. सं. पुष्पा भारती, धर्मवीर भारती की साहित्य साधना
4. सं. डॉ नगेंद्र, डॉ हरदयाल, हिंदी साहित्य का इतिहास, मयूर बुक्स,नई दिल्ली, (1973)

शब्दकोश

1. The Oxford English Dictionary, William Little, H.W Flower, Coulson, Thomas press Ltd., (2000)
2. सं. बाहरी, डॉ. हरदेव, राजपाल हिंदी शब्दकोश, राजपाल एन्ड सन्ज, दिल्ली (2009)
3. सं. द्वारकाप्रसाद शर्मा, संस्कृत-शब्दार्थ-कौस्तुभ, लाला रामनारायण लाल प्रकाशन, इलाहबाद (1928)